हिन्दू संगठन

संघे शक्तिः कलौ युगे ।

क्यों और कैसे ?

स्वामी श्रद्धानन्द
सन्यासी

हिन्दू संगठन

भारतीय वर्ण-व्यवस्था के और आश्रमधर्म के भङ्ग हो जाने के परिणामस्वरूप हिन्दुओं के पतन का इतिहास और उस पतन को रोकने के उपाय

लेखक
श्रद्धानन्द सन्यासी

विजय पुस्तक भण्डार
श्रद्धानन्द बाजार
दिल्ली.

प्रकाशक —

विजय पुस्तक भण्डार

श्रद्धानन्द बाजार,

दिल्ली।

विषय-सूची

भूमिका

श्री स्वामी जी महाराज ने यह पुस्तक १६२४ में लिख कर समाप्त की। उस समय हिन्दुओं में संगठन की चर्चा का आरम्भ हुआ था। उसे भारत की तत्कालीन पराधीन मनोवृत्ति का ही परिणाम समझना चाहिये कि बहुत से हिन्दुओं ने संगठन की चर्चा को भी गुनाह समझा और उसका विरोध किया। जो महानुभाव राजनीतिक क्षेत्र में अगुआ बने हुए थे, वे हिन्दू संगठन को एक हौआ-सा मानने लगे थे। ऐसे लोगों के भ्रम-निवारण और हिन्दू जनता के उद्बोधन के लिए यह पुस्तक अंग्रेजी में प्रकाशित की गई थी। पुस्तक को प्रकाशित हुए तेइस वर्ष हो गये, भारत की राजनीतिक परिस्थिति पलट गई परन्तु इस पुस्तक की आवश्यकता कम नहीं हुई। आज भी हिन्दुओं को मोह-निद्रा से जगाने की आवश्यकता बनी हुई है और स्वतन्त्र भारत में भी ऐसे सज्जन विद्यमान है जो हिन्दू जाति के शक्तिसम्पन्न बनने

के प्रयत्नों को सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। ऐसे लोगों को यह बताना आवश्यक है कि भारत में बसने वाली मुख्य जाति का शक्तिसम्पन्न होना राष्ट्र की शक्तिसम्पन्नता का विरोधी नहीं प्रत्युत मूल आधार है। इसी उद्देश्य से पुस्तक का हिन्दी अनुवाद प्रकाशित किया जा रहा है।

यह अनुवाद दो योग्य और उत्साही नवयुवकों ने किया है। पृष्ठ ६४ तक का अनुवाद श्री० नरेन्द्र विद्यावाचस्पति ने और उससे आगे के पृष्ठों का अनुवाद श्री विद्यासागर विद्यालङ्कार द्वारा किया गया है। विजय पुस्तक भण्डार गुरुकुल कांगड़ी के इन दोनों स्नातकों का आभारी है।

इन्द्र विद्यावाचस्पति
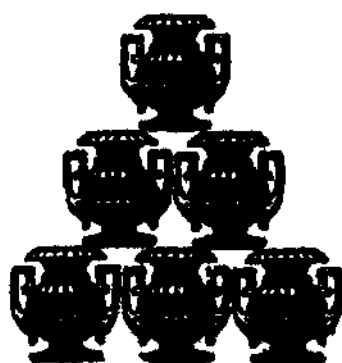
प्रस्तावना

आजकल के हिन्दुओं के पुरखा प्राचीन आर्य, जिनके नाम पर हमारी मातृभूमि आर्यावर्त कहलायी, बहुत ही सभ्य तथा संगठित जाति के थे। प्राचीन भारतीय इतिहास की निष्पक्ष शोध से सिद्ध हो जायेगा कि आज संसार की सभ्य कहलाने वाली जातियां जिस समय जंगलों में जंगली जानवरों की न्याईं भटकती फिरती थीं और पेड़ों की पत्तियां ही जिनके शरीरों का सहारा थीं, उस समय आर्य ऐसी असली संस्कृति को सींच रहे थे, जिस की जोड़ की सभ्यता आज भी पैदा नहीं हुई। उनकी सभ्यता उन्नत, उदार एवं व्यापक थी, उससे उस समय का सम्पूर्ण जाना हुआ संसार प्रभावित था। आर्यावर्त के सम्पूर्ण महाद्वीप में सुख और शान्ति का साम्राज्य था, परिणामस्वरूप ध्रुवों, फारस, चीन, जापान, पूर्वी भारतीय द्वीप समूहों तथा दूसरे गोलार्ध तक भी, जहां पुरानी आर्य सभ्यता के चिन्ह राम-सीता के वार्षिक समारोहों तथा भारतीय-प्रारम्भ वाले पुराने अवशेषों में पाये गये हैं, औपनिवेशिक दल भेजे जाते थे।

फारस तथा यूनानियों द्वारा प्रारम्भ किये गये राज्यों के धुंधले इतिहासों में विदेशियों के भारत पर कुछ आक्रमणों का हाल मालूम पड़ता है, परन्तु इनका भारतीय जनता पर कोई असर नहीं पड़ा, यदि आक्रमणकारी कुछ विदेशी पीछे छोड़ भी गये तो विभिन्न आर्य जातियों ने पचा लिया, समय पाकर वे भारतीय राष्ट्र के हिस्सा बन गये। ईसाई संवत् के शुरू होने से से पहले मकदूनिया का सिकन्दर महान् ही सब आक्रमणकारियों

से अधिक सफल होकर सतलुज नदी के किनारे तक पहुँचने में कामयाब हो सका था। सिकन्दर ही था, जिसने अपने सेनापतियों को भारतीय क्षत्रप-सामन्त शासक के रूप में नियुक्त किया था, परन्तु उसी समय समुद्रगुप्त तथा दूसरे भारतीय शासक हुए, जिन्होंने न केवल विदेशियों से अपनी खोई हुई जमीनें छीनीं, अपितु यूनानी राजकुमारियों से भी विवाह किया, जो अपने यूनानी अनुचरों के साथ दूसरे भारतीय-आर्य कुलों में उत्पन्न सन्तानों के समान हिन्दू बन गईं। भारतीय अपनी पुरानी पवित्रता को छोड़ कर जब वाममार्ग की अपवित्र क्रियाओं को करने तथा दूसरी बुराईयों में पड़ गये उस समय जनता के सुधार का बीड़ा भगवान् बुद्ध ने उठाया, परन्तु इनके अनुयायी भी कट्टर मजहबी बन गये। इसका नतीजा हुआ कि संयुक्त भारतीय जनता दो विरोधो दलों में बंट गयी।

दो शताब्दी से अधिक समय तक सम्पूर्ण आर्यावर्त पर बौद्ध धर्म का प्रभाव रहा। भगवान् बुद्ध द्वारा प्रचारित शुद्ध धर्म जब अनास्तिकवाद तथा एक खास तरह के कर्मकाण्ड में पड़ बिगड़ गया, उस समय शङ्कराचार्य ने वेदान्त के आध्यात्मिक हथियार को हाथ में ले बौद्ध धर्म को भारतभूमि से निकाल बाहर किया। इस समय राष्ट्र की पुरानी प्रतिष्ठित शासन-व्यवस्था के अनुकूल स्थापित सर्वोच्च शक्ति की परम्परा के विरुद्ध प्रतिक्रिया के रूप में अनियन्त्रित स्वेच्छाचारी राज्यतन्त्रों ने सिर उठाना प्रारम्भ किया। वेद में प्रतिपादित आर्यों के सामाजिक संगठन का पुराना आदर्श धीमे धीमे बदलता गया, इसके साथ ही राष्ट्र का आदर्श भी बदल गया।

आर्य युग में भारतीय राज्य जनता की धरोहर समझे जाते थे। सिकन्दर के समय में भी कुछ राज्य ऐसे थे, जिनमें

राजा नहीं होते थे, यूनानी लेखकों ने इन्हें प्रजातन्त्र के रूप में वर्णित किया है। उस समय राज्यों और राजाओं के नाम राज्य परिवार पर न होकर जनता के नाम पर होते थे। बौद्ध-युग में धीमे २ विदेशी हमलों के लगातार होने तथा विदेशी शासन के कारण शासन व्यवस्था सम्बन्धी मामलों में जनता की सम्मति कम से कम पूछी जाने लगी और राजा की ताकत लगातार स्वेच्छाचारी होती गई और अन्त में राज्यसत्ता का अधिकार जनता द्वारा न प्राप्त होकर दैवी कृपा से प्राप्त समझा जाने लगा। ... .कौन हकूमत करता है—जन-साधारण ने इसका ख्याल करना छोड़ दिया—जो कोई राजा या राजकीय परिवार अपनी शक्ति को स्थापित करने में समर्थ होता उसी के प्रति राजभक्ति दिखाने में गौरव अनुभव करते थे।*

भारत में राजाओं के दैवी अधिकार के सिद्धान्त ने मजबूत जड़ जमा ली। 'नराणां नराधिपम्' मनुष्यों में राजा रूप में मेरी शक्ति ही शासन करती है—भगवान् कृष्ण के इन सुन्दर तथा उत्साहवर्धक वाक्य की गलत व्याख्या करी जाने लगी। संवत् ६६६ विक्रमी (मई ६०६ ईसवी) के ज्येष्ठ मास में स्थानेश्वर (थानेसर) में हर्ष जिस समय गद्दी पर बैठा तो उस समय आर्यों की मातृभूमि का नाम आर्यावर्त से बदल कर हिन्दुस्थान होगया। हर्ष के राजपण्डित बाणभट्ट तथा प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्यूनसाङ्ग के आधार पर हम कह सकते हैं कि हर्ष वास्तव में एक चक्रवर्ती महाराजा था और उसके समय तक हिन्दुओं का अधः पतन अधिक न पनप सका था। १ साल तक हर्ष ने राज्य की बागडोर सम्भाली और उसके समय में विदेशी प्रभाव बिल्कुल देखने में नहीं आता था।

---

* वैद्य—हिस्ट्री आफ मिडिवल इण्डिया, प्रिफेस, V.

ह्यूनसाङ्ग कहता है—"देश की विभिन्न जातियों तथा वर्णों में ब्राह्मण सब से अधिक पवित्र और आदरणीय हैं............... क्षत्रिय और ब्राह्मण अपने जीवन में बिल्कुल खरे और झूठा आडम्बर न करने वाले, सच्चे और सादे हैं और वे बहुत मितव्ययी हैं—......चार पैतृक वर्ण भेद मौजूद हैं।" गुण कर्म की वैदिक व्यवस्था की जगह वर्ण पैतृक बनने लगे थे। आज कल मौजूद हजारों उपजातियों का उल्लेख उस समय नहीं मिलता, जिनसे आज का समाज छिन्न-भिन्न हो रहा है।

ह्यूनसाङ्ग कहता है:—"पहला स्थान ब्राह्मणों का है। वे अपने सिद्धान्तों का पालन करते हैं, तथा सख्ती से आचार सम्बन्धी पवित्रता को निबाहते हुए संयम पूर्वक जीवन बिताते हैं। क्षत्रियों का दूसरा स्थान है, इन्हीं से राजन्यों की जाति का निर्माण होता है। कई पीढ़ियों तक सर्वोच्च-शक्ति इन्हीं के पास रही, भला करने की इच्छा तथा दया इनके उद्देश्य हैं। व्यापारियों की श्रेणी—वैश्यों का तीसरा स्थान है, जो व्यापार के लायक वस्तुओं का विनिमय करते हैं या लाभ के लिये दूर और पास जाते हैं। किसानों तथा शूद्रों का चौथा स्थान है। ये जमीन को उपजाऊ बनाने में मेहनत करते हैं तथा बोने और काटने के काम में बहुत मेहनती हैं।" वैदिक वर्ण-व्यवस्था से इस समय अन्तर आ गया मालूम पड़ता है। किसान पूरे वैश्य समझे जाते थे न कि शूद्र। वैदिक काल में सेवा करने वाली चौथी श्रेणी शूद्रों की समझी जाती थी और उस समय पांचवां वर्ण कोई नहीं था।

"एक वर्ण का सदस्य अपने वर्ण में ही विवाह करता है। पिता या माता के पक्ष के सम्बन्धियों में आपसी विवाह नहीं होता और कोई स्त्री अपना दूसरा विवाह बिल्कुल नही करती।"

उस समय विधवा-विवाह का उल्लेख नहीं मिलता, सम्भवतः बाल-विवाहों के न होने से। अपने पूर्ण यौवन में कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा ने हर्ष की बहिन राज्यश्री से विवाह किया था। बाण के कथनानुसार हर्ष के राज्यपण्डित बाण ने एक युवती ब्राह्मण कन्या से शादी की थी। शारीरिक दृष्टि से पूर्ण समर्थ होने पर राज्यश्री का परिणय किया गया था, विवाह के दिन ही सम्पूर्ण संस्कार की समाप्ति हो गई थी। बाण ने अपने आप भी मयूर की युवती बहिन के साथ विवाह किया था। पुराने और आधुनिक भारत को अलग करने वाली कड़ी के रूप में हर्ष का समय कहा जा सकता है क्योंकि इसके बाद हम देखेंगे कि धीमे-धीमे बाल विवाह का प्रचलन जारी होता गया। (वैद्य ६४, ६५)।

वर्णव्यवस्था अभी तक मजबूत न हुई थी, जितना कि पीछे जाकर हो गयी, क्योंकि हम श्री वैद्य लिखित 'मध्यकालीन हिन्दू भारतवर्ष' नाम वाली अंग्रेजी पुस्तक की पहली जिल्द में पढ़ते हैं—"वर्ण व्यवस्था अब तक भी ढीली थी और ऊंचे वर्ण वाले समीपस्थ निचले वर्ण वाले से विवाह कर सकते थे और इसका सन्तान के वर्ण पर कोई असर न होता था। ह्यूनसांग वर्णन करता है कि हर्ष की लड़की का विवाह ध्रुवभट्ट से हुआ था। पहला वैश्य था तथा पिछला एक क्षत्रिय था। बाण लिखता है कि हर्ष की बहिन कन्नौज के मौखरि ग्रहवर्मा से व्याही गयी थी। हर्ष के परिवार का नाम वर्धन अथवा भूति शब्द से समाप्त होता था जो कि वैश्य वर्ण का वाचक था, मौखरियों के नाम वर्मन् शब्द से समाप्त होते थे, जिनसे उनका क्षत्रिय वर्ण झलकता था।.... ऊपरले वर्ण वाले निचली वर्ण वाली लड़कियों से विवाह कर लेते थे, परन्तु यह अनुलोम विवाह साधारण तौर पर साथ वाले

निचले वर्ण वाले के साथ ही होता था, कभी कभी—दो या अधिक निचली वर्ण वाली कन्या के साथ भी विवाह हो जाता था। बाण ने लिखा है कि उसके दो परस्व भाई (शूद्र स्त्री से ब्राह्मण के लड़के) थे।" पृष्ठ ६१ और ६२

जैसा हम बतला आये हैं उस समय उपजातियां नहीं थीं। "किसी प्रकार के छोटे-मोटे भेदों के बिना ब्राह्मण एक वर्ण में गिने जाते थे। पंच द्रविड़ों और पंच गौड़ों के वर्तमान भेद तथा दूसरी छोटी मोटी उपजातियों के विभेद उस समय तक पनप न सके थे..........." पृष्ठ ६७

क्षत्रियों के सम्बन्ध में श्री वैद्य लिखते हैं—"जिस प्रकार पांच गौड़ तथा पांच द्रविड—१० उपभेद पैदा न हुए थे, इसी प्रकार राजपूत खत्रियों के भेदों से क्षत्रिय नहीं बंटे थे.... और न क्षत्रियों ने ३६ परिवारों में विभक्त होकर अपने को पवित्र वंश का मान कर विवाह को अपने तक ही सीमित कर दिया था। इन ३६ परिवारों में से किसी एक का नाम भी इस समय तक सुनने में नहीं आता........किन्हीं विशिष्ट परिवारों में विवाह सम्बन्धी पाबन्दी न लगा कर भारतीय क्षत्रिय एक संयुक्त वर्ण की न्याईं रहते थे।" (पृष्ठ ७०)

वैश्यों ने दूसरे ऊचे वर्णों के समान अपने वर्ण की पवित्रता को अक्षुण्ण नहीं रखा है और उन में से कुछ तो शूद्रों की स्थिति तक पहुंच गये हैं। ह्यूनसाङ्ग के समय के वैश्य, उस के कथनानुसार, व्यापारी, व्यवसायी, महाजन होते थे, इन्होंने सम्भवतः अपने को सीमित क्षेत्र में ही बांधे रखा। माहेश्वरी तथा अग्रवाल आदि वैश्यों की उपजातियों के नामकरण अभी तक न हुए थे।" (पृष्ठ ७२ और ७३)

अन्त में, शूद्रों की बारी आती है, ह्यूनसांग के अनुसार जिनका व्यवसाय खेती का काम था। ईसाई संवत् से पूर्व खेती वैश्य किया करते थे, सेका कार्य शूद्र श्रेणी पर छोड़ा हुआ था। जिन्दगी के प्रति अरुचि सम्बन्धी बौद्ध विचार के फैलाव से उद्योग धन्धे का यह परिवर्तन हुआ।........खेतिहरों के सिवाय बहुत सी श्रेणियां थीं जो भिन्न भिन्न प्रकार के श्रम कार्यों को करती थीं और ये श्रेणियां शायद मिले-जुले प्रारम्भ वाली थीं।" (पृष्ठ ७४)

तथा कथित "अछूतों" की अवस्थिति के सम्बन्ध में श्री वैद्य का यह विचार कि वे वैदिक काल में थे, सम्भव प्रतीत नहीं होता, प्रतीत होता है कि वे ह्यूनसांग की यात्रा के समय अज्ञात नहीं थे। वह कहता है:— कसाई, मछुआरे, जल्लाद और मेहतरों के घर विशेष प्रकार के निशानों से चिन्हित होते थे। वे शहर से बाहर रहने के लिए बाध्य हैं, जब वे गांव में घुसते हैं तो उन्हें बांयी ओर सरकते हुए जाना पड़ता है।" श्री वैद्य आगे लिखते हैं—"गन्दी आदतों वाले तथा मरे हुए मांस पर जिन्दगी बसर करने वाले द्रविड़ जातियों की तलछट से सम्भवतः इन दलित जातियों का निर्माण हुआ होगा। परन्तु सन् १६०१ की जन गणना में पंजाब और राजपूताना में इन में आर्य जाति का मेल भी पाया गया। सर एच० रिस्ले ने इस अवसर पर मानव जाति के विज्ञान सम्बन्धी विशेष गणना की थी। इस गणना से मालूम पड़ा कि पंजाब के चमार और चुहड़ नसल में पूरी तरह आर्य हैं, शायद ये बौद्ध काल में अपने पेशे के कारण नीच समझे जाने लगे। स्मृतियों में कहा है कि प्रतिलोम विवाह की सन्तान—खास तौर से शूद्र पतियों की ब्राह्मण स्त्रियों से हुई सन्तान—यद्यपि ये बहुत कम देखने में आती थीं—चाण्डाल समझी

जाने लगीं, इस प्रकार से इनकी नसों में आर्य खून बहने लगा।" (पृष्ठ ७५)

सारांश में—सम्राट हर्ष की मृत्यु तक भारतीय भूमि पर विदेशियों के पांव जमने नहीं पाये थे। विदेशी हमलों को लगातार व्यर्थ कर दिया गया था, यदि ये कभी किसी अंश में कुछ समय के लिये कामयाब हुए भी तो इन्हें आखिर में विफल कर ही दिया गया। अनार्य श्रेणियों का उस समय अभाव था, यदि कभी अनार्य आये भी तो उन्हें आर्यों के समाज ने अपने में पचा लिया। उस समय तीन ही ऊंचे वर्ण थे - ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य। इन में कोई उपजाति न थी। मुख्य वर्णों में पारस्परिक विवाह प्रायः हुआ करते थे। शायद शूद्रों में उन के विभिन्न कार्यों के अनुसार उपजातियां थीं। आखिर में, तथा कथित अछूत या पंचम वर्ण वाले भी थे, जो गांव के बाहर रहनेके लिये बाधित थे।

उन दिनों बालविवाह का प्रचलन नहीं था और इसीलिये बाधित विधवावृत्ति भी हिन्दू समाज की शान्ति को नष्ट करने के लिए पैदा नहीं हुई थी। राज्यश्री जैसा विधवावृत्ति का कोई उदाहरण कभी होता भी था तो उस अशान्त विधवा को बौद्ध विहार अपने भिक्षुणियों के संघ में लेने के लिये तैयार रहते थे। हिन्दू समाज की स्त्री की वर्तमान हालत की अपेक्षा हर्ष के समय हिन्दू स्त्री की बहुत अच्छी हालत थी। परन्तु इसमें एक अपवाद था। राजराज्य का एक पत्नित्व का उदाहरण क्षत्रिय राजाओं में कहीं विरले ही देखने को मिलता था। हिन्दू राजाओं के रनिवासों में कई-कई पत्नियां, उपपत्नियां, वेश्यायें, लड़ाई में जीते हुए या मारे गये राजाओं की विधवायें रहती थीं, जो कि शायद गुलामी की हालत तक पहुँच गई थीं। विधवा विवाह के

असम्मत होने से विजेता के परिवार की इस तरह की स्त्रियों की हालत उपपत्नियों के समान होगई थी। इस में अचम्भे की कोई बात नहीं है कि ये स्त्रियां गुलामी अपेक्षा मर जाना ज्यादह पसन्द करती थीं और अपने पतियों की चिताओं पर या आग लगा कर स्वतन्त्रतापूर्वक मौत का आह्वान करती हुई बलि दे देती थीं।

" इन अपवादों के सिवाय स्त्रियों की हालत सामान्यरूप से बहुत अच्छी मालूम पड़ती है। उनके साथ अच्छा बरताव होता था और उन्हें सुशिक्षित किया जाता था। राज्यश्री विभिन्न कलाओं और शास्त्रों में निष्णात एवं एक सुशिक्षित महिला थी।" (वैद्य पृष्ठ ६६)

उस समय के लेखकों द्वारा वर्णन से मृत्यु संस्कार के अवसर पर की प्रथाओं से मालूम पड़ता है कि ब्राह्मणों का भोजन खिलाया जाता था और राजा की व्यक्तिगत सम्पत्ति में से उन्हें दान भी दिया जाता था, परन्तु यह यमलोक जाते समय मौत की नदी को पार कराने में सहायक होगा, इस ख्याल से यह नहीं दिया जाता था अपितु उनके देखने से उनके शोक पर असर पड़ता था। (वहीं पृष्ठ ६८)

अभी हाल (नवम्बर १९२४) में रावलपिण्डी में सनातन धर्म कान्फ्रेंस में सभापतित्व करते हुए पुराने सनातनी नेता पण्डित मदनमोहन मालवीय ने कहा था कि श्राद्ध के समय ब्राह्मणों को दिया जाने वाला भोजन पुरखाओं तक नहीं पहुँचता परन्तु यह उनके सद्गुणों की पुण्यस्मृति में दिया जाता था।

संक्षेप में, विक्रमी संवत् के उत्तरार्ध में हिन्दुओं की यह दशा थी जब इस महान् राष्ट्र का अधःपतन शुरु हुआ। जनता

की राजनीतिक मनोवृत्ति तथा अवस्था के इस परिवर्तन से विदेशियों के हमलों के शिकार बनने में आसानी हुई तथा सामाजिक रीतिरिवाज विदेशी हमले के कारण गुलामी की हालत हो जाने से ज्यादह बिगड़ते चले गये।

अगले पृष्ठों में हिन्दुओं की गिरावट का इतिहास वर्णन कर वर्तमान शोकजनक अधोगति के कारण खोजने का प्रयत्न किया गया है। राष्ट्र के उद्धार की राह को दिखाने के लिये यह एक प्रयत्न है।

कुरुक्षेत्र गुरुकुल,
४ मंगसिर १९८१ वि.
(२० नवम्बर १९२४ ई.)

श्रद्धानन्द सन्यासी.

प्रकरण १

हिन्दू-एक विनाशोन्मुख जाति

फरवरी सन् १६४२ में कलकत्ता आर्यसमाज के विशालभवन में मैं जब खड़ा हुआ था, उस समय यूरोपियन पोशाक पहने हुए एक बंगाली भद्र पुरुष इण्डियन मैडिकल सर्विस के कर्नल यू० मुखर्जी का मुझसे परिचय कराया गया। उनकी पोशाक पहले मेरी उनके विरुद्ध धारणा बन गयी थी, परन्तु जब उन्होंने अपनी उस पुस्तिका का उल्लेख किया जिसमें वह हिसाब से यह दिखाने जा रहे थे कि यदि कोई कारगर कदम न उठाया गया तो अगले ४२० सालों में भारतीय आर्य जाति संसार से मिट जायेगी तो मैंने उनकी देशभक्ति को सराहने का ख्याल किया और मन में निश्चय किया भविष्य में मैं कभी बाहरी भेस से ही किसी आदमी को न जाचूंगा।

कर्नल मुखर्जी ने सन् १६११ ई० 'भारत की जनगणना' सम्बन्धी अंग्रेजी पुस्तक की पहली जिल्द के पृष्ठ १२२ को मुझे पढ़ कर सुनाया—

"पिछले ३० सालों में सम्पूर्ण भारत में कुल आबादी की

दृष्टि से हिन्दुओं का अनुपात ७४से ६६ प्रतिशतक गिर गया है, परन्तु यह कुछ हद तक प्रत्येक नयी आने वाली जनगणना में अल्पसंख्यक हिन्दुओं वाले इलाके शामिल करने से हुआ है।"
कर्नल मुखर्जी से मैं इस बात में सहमत होगया कि सम्पूर्ण भारतीय महाद्वीप के हिन्दुओं की गिनती के असली ह्रास का ख्याल करें तो नये इलाकों के जुड़ने का असर नहीं के बराबर है। इस समस्या को कर्नल मुखर्जी इस ढंग से सुलझाया—

पिछले तीस वर्षों में हिन्दुओं की कमी के ५ प्रतिशतक के वास्तविक अनुपात को लें तो इस समय हिन्दू कुल आबादी के ६६ प्रतिशतक हैं यदि वर्तमान क्षय को रोकने की कोशिश नहीं की गयी तो हिन्दुओं की यह गिनती ४२० (१४×३०=४२०) सालों में गायब हो जायेगी। कर्नल मुखर्जी द्वारा मेरे सम्मुख उपस्थित किये गये तथ्यों का मेरे ऊपर असर पड़ा। मैं पहले से ही ईसाइयों और मुसल्मानों से शुद्धि के कार्य में रुचि रखता था, अब मैंने इस विषय का विशेष अध्ययन प्रारम्भ कर दिया। इसके बाद १३ साल तक मैं संख्या शास्त्र का विद्यार्थी रहा, परन्तु सन् १९२३ ई० के प्रारम्भ में मैंने अपना दिल और दिमाग जनता के बचाव तथा उन्नति की लड़ाई में लगा दिया और अब वह समय आगया है जब मैं अपनी विचारणाओं और अनुभव को जनता के विचारशील हिस्से के सम्मुख उपस्थित करूं।

गिनती में कमी के कारण

गिनती में हिन्दुओं के क्षय के कारण कई हैं, जिनमें से कुछ सन् १९११ ई० की जनसंख्या के डायरेक्टर ने दिखलाये हैं। उसने मुख्य प्रान्तों में मुसलमानों की प्रतिशतक आबादी की

तालिका निम्न रूप से उपस्थित की है :—

सीमाप्रान्त	६३ प्रतिशतक
बलुचिस्तान	६१ ,,
पंजाब	५५ ,,
संयुक्त बंगाल	५३ ,,
आसाम	२८ ,,
बम्बई	२० ,,
संयुक्त प्रान्त	१४ ,,
बिहार-उड़ीसा	१० ,,
बरार मध्यप्रन्त	·४ ,,
बर्मा	३.५ ,,

इसके बाद आप लिखते हैं:—

"भारत के कुल मुसलमानों का ३६ प्रतिशतक अथवा २ करोड़ ४० लाख मुसलमान बंगाल में रहते हैं। वे अधिकतर पूर्वी और उत्तरी जिलों में पाये जाते हैं। बंगाल के पठान शासकों के ससय में इस हिस्से में जबर्दस्त तथा बहुत ही सफल प्रचार किया गया था। यहां के निवासी पूरी तरह से हिन्दू कभी नहीं हुए थे, सम्भवतः उनमें से अधिकतर मुसलमानों के पहले हमले के समय बौद्ध धर्म के एक विकृत रूप को मानते थे। ऊंचे वर्ण वाले हिन्दू उन्हें अपवित्र ख्याल करते थे, इसलिये वे आसानी से मुल्लाओं की इस शिक्षा को स्वीकार कर लेते थे कि अल्लाह की नजर में सब आदमी समान हैं। कभी कभी इसके लिए जबर्दस्ती भी हुई होगी।

"दूसरा कम ख्याल आने वाला अपवाद मलाबार है। यहां पर स्थानीय मुसलमान बनने वालों के वंशज मोपला कहलाते

हैं। ८वीं शताब्दी में मलाबार के समुद्री किनारे पर चक्कर लगाने वाले अरबों ने इन्हें इस्लाम में दीक्षित किया था। कुछ नये मुसलमान अब भी बनाये जाते हैं।

"इसके सिवाय यह भी ख्याल करना चाहिये कि उत्तरी भारतवर्षकी मुसलमान आबादी भी पूरी तरह से विदेशी खून से नहीं पनपी। पंजाब के १ करोड़ २० लाख इस्लाम के अनुयायियों में से १ करोड़ राजपूत, जाट, अरायन, गूजर, मोची, तुरखन और तेली आदि जातियों में गिने गये थे। ये सब शुरू में हिन्दू थे। विदेशी जातियों से सम्बन्ध रखने वाले पठान, बिलोच, शेख, सैय्यद और मुगलों की गिनती २० लाख से भी कम थी। इनमें से भी बहुत सों की नसों में बहुत ही कम विदेशी खून बहता है।" (पृष्ठ १२८) सन् १९०१ से १९११ ई० तक के आखिरी दशक में आबादी की बढ़ती के सम्बन्ध में जनसंख्या के डायरेक्टर १७२वें पैरा में कहते हैं—

"इस दशक में मुसलमानों की बढ़ती ६.७ प्रतिशतक हुई, वहां इनके मुकाबले में हिन्दुओं की बढ़ती केवल ५ प्रतिशतक हुई। हिन्दू तथा दूसरे धर्मों से मुसलमान बनने वाले लगातार पर कम होते हैं, बनिस्बत उनके जो पैगम्बर के अनुयायिओं के सन्तान के लिए अत्यन्त उर्वरा भूमि होने से। सम्भवतः उनके भोजन के अधिक पौष्टिक होने का भी असर हो, परन्तु सामाजिक रीति रिवाजों के कारण हिन्दुओं की अपेक्षा उनके अधिक ज्यादह सन्तानें होती हैं उनमें विवाह सम्बन्धी रुकावटें कम हैं, बालविवाह प्रचलित नहीं हैं और विधवायें पुनर्विवाह आसानी से कर लेती हैं।

" १५ से ४० उम्र तक की स्त्रियों की कुल संख्या में विवाहित स्त्रियों में हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की संख्या की अधिकता

से मालूम पड़ता है कि मुसल्मानों की उत्पादक शक्ति अधिक है। इस का नतीजा हुआ कि मुसल्मानों में १५–४० वर्ष तक के प्रत्येक आदमी के ५ साल की उम्र तक के ३७ बच्चे हैं, जब कि हिन्दुओं के केवल ३३ ही होते हैं। सन् १८८१ से जनगणना वाले इलाकों में मुसल्मानों की संख्या २६·४ प्रतिशतक बढ़ गई वहां हिन्दुओं की केवल १५·१ प्रतिशतक बढ़ गयी।"

बर्मा में दोनों जातियों की तुलनात्मक बढ़ती के सम्बन्ध में जनगणना की रिपोर्ट के १७३ वें पैरे में लिखा गया है :—

"हमने देखा है कि बर्मा में हिन्दू प्रवासी बौद्ध जनता में घुलमिल कर पच जाते परन्तु मुसल्मान नहीं। कई पीढ़ियों में मुसल्मान घराने बर्मा के अलग अलग और छितराये हुए हिस्सों में बस गये हैं, इन्होंने अपने ईमान को कायम रखा है। एक मुसल्मान जब एक बर्मी औरत से शादी कर लेता है तो वह अपनी सन्तान को इस्लामी मजहब में ही दीक्षित करता है। इन मिले-जुले विवाहों से हुई दोगली सन्तान जरबदी कहलाती है।"

सन १९११ की जनगणना के कुछ लम्बे उद्धरण मैंने यहां पर दिये हैं, क्यों कि इस रिपोर्ट में विस्तारपूर्वक हिन्दुओं की गिरावट के मूलकारणों को देखने की कोशिश की गई है। अब मैं हिन्दुओं के पतन के कारणों को एक एक करके लेता जाऊंगा और देखूंगा कि हिन्दू सुधारकों ने समय समय पर जाति के पुनरुद्धार और काया कल्प के लिये क्या प्रयत्न किये हैं ? अन्त में, मैं हिन्दु संगठन के आन्दोलन को उसके प्रारम्भ के इतिहास से लेकर वर्तमान हिन्दू महासभा के संगठन तक रखूंगा। साथ ही यह जांचने की कोशिश करूंगा कि इस संस्था ने हिन्दू जाति को संगठित एवं मजबूत करने में क्या उपाय सुझाये हैं।

प्रकरण २

पहला कारण

[दूसरे धर्मों में परिवर्तन]

पाठकों के सामने वर्तमान विषय की प्रस्तावना उपस्थित करते हुए मैंने बताया था कि विक्रम संवत् की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में (ईसाई सन् की सातवीं सदी के मध्य में) सम्राट् हर्ष की मृत्यु तक किन्हीं अनार्य जातियों की उपस्थिति की साक्षी नहीं मिलती, यदि कुछ अनार्य आये भी तो इन्हें बौद्ध संगठन की राख के ऊपर नये निर्माण होने वाले हिन्दू समाज ने अपने अन्दर पचा लिया। परन्तु हर्ष की मृत्यु के बाद दूसरों को अपने मत में दीक्षित करने वाली इस्लाम की उत्साही भावना के माध्यम से विदेशियों ने भारत पर स्थायी कब्जा करना प्रारम्भ कर दिया।

विक्रमी संवत् की आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में सिन्ध में एक परिवर्तन हुआ। साहसी नाम का शूद्र राजा सिंध

पर उस समय राज्य करता था। काक नाम के ब्राह्मण मन्त्री ने उसके राज्य पर कब्जा कर लिया और अपने स्वामी की विधवा रानी से विवाह कर लिया। काक ने एक ओर इस्कानिया, बाबिया, मुलतान और कोट्ट्र के प्रदेश जीते तथा दूसरी ओर उसने मकरान को पार कर सिविस्तान को जीत लिया। काक एक धर्मान्ध हिन्दू था। उसने लोहाना के बौद्धों को सिर झुकाने के लिये विवश किया। लोहाना और जाट अपने को क्षत्रिय कहते थे, इसलिये उसने उन पर दूषित सामाजिक नियम लादने चाहे। "इस समय हिन्दुत्व शक्ति सम्पन्न हो रहा था, इसलिये हिन्दू समाज ने प्रत्येक उपजाति को उसकी परम्पराओं के अनुसार स्थिति को स्वीकृत करना प्रारम्भ कर दिया। लोहाना तथा जाटों—दोनों में ही विधवाओं के पुनर्विवाह की प्रथा थी, कट्टर हिन्दू तथा ठोस क्षत्रिय इसके विरोधी तथा इसका पालन न करते थे। इसी कारण वे लोहानों को वैश्य तथा जाटों को शूद्र स्वीकार करते थे। इन दोनों जातियों में अब तक भी सैनिक प्रवृत्ति बची हुई है। एक ऐतिहासिक यह लिखे बिना नहीं रह सकता कि हिन्दू-कट्टरपन ने ताकत इकट्ठी कर कुछ जातियों की सैनिक प्रवृत्ति का ठण्डा कर दिया जिसके परिणामस्वरूप भविष्य के घटनाचक्र पर हानिकारक असर पड़ा।" (वैद्य पृष्ठ १६५, १६६)।

इस्लाम द्वारा जबर्दस्ती धर्म-परिवर्तन

सिन्ध सरलता से विदेशी हमलों का शिकार बन सकता था, इसलिये अरबी मुसलमानों ने इसे जीतने के कुछ असफल प्रयत्न किये। अन्त में, जब ईरान जीत लिया गया, उस समय सिन्ध पर हमला आसान होगया। इसके लिये एक अच्छा

बहाना भी मिल गया ! सिन्धु नदी का डेल्टा डाकुओं का अड्डा था। वे लंका के मुसलमान यात्रियों पर हमला करते थे, उनके कीमती खजानों को लूट कर पुरुष व स्त्री यात्रियों को कैद कर लेते थे। काक के लड़के, तत्कालीन सिन्ध के राजा दाहिर ने इनकी फरियाद सुनी, परन्तु डाकुओं के घृणित अपराध की जिम्मेदारी स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। इस पर ईरान के हाजी शासक ने अपने दामाद मुहम्मद कासिम को सिन्ध के काफिरों से लड़ने को भेजा। हल्ले में देवल ले लिया गया। अरबी मुसलमान ऐतिहासिक शाहनामा के आधार पर इतिहास लेखकों ने इस लड़ाई के परिणाम का वर्णन किया है। शहर के सम्पूर्ण पुरुष-नागरिकों को कत्ल कर दिया गया। जनता ने भयभीत होकर दया की प्रार्थना की परन्तु मुहम्मद कासिम ने कहा कि उसे रहम करने की इजाजत नहीं है। जब मुहम्मद कासिम उस मन्दिर के पास पहुँचा जिसका कलश गिरा दिया गया था तो उसने वहां बुद्ध की शरण में प्राप्त ७०० सुन्दर स्त्रियों को पाया। इन्हें "उसने निश्चयपूर्वक गुलाम बना लिया।" सम्भवतः मन्दिर एक बौद्ध स्त्रियों का विहार था। देवल अधिकतर बौद्ध था। सूबेदार भी एक बौद्ध ही था, जिसे शाहनामा में जहीन बुद्ध नाम दिया गया है। कैद किये गये मुसलमान स्त्री पुरुष कैदियों का पता देने वाले आदमियों को मुहम्मद कासिम ने माफी दे दी। इन कैदियों को सौंप देने पर उन आदमियों को तथा कैद में उदारता-पूर्वक व्यवहार करने पर उनके हिन्दू अफसर को प्राणभिक्षा दे दी गयी। कैदियों के प्रति मुसलमानों के क्रूर व्यवहार तथा बौद्धों के उदार व्यवहार में अन्तर देखिये। उस हिन्दू अफसर को बाद में मुसलमान बनना पड़ा.................।

"यह उसका भयङ्कर प्रारम्भ था, जिसके फलस्वरूप मुसलमानों द्वारा भारत-विजय हुई। देवल इसका पहला शिकार था। पुरुष आबादी में से अधिकतर का कत्ले-आम कर दिया गया। शहर पूरी तरह से लूट लिया गया। इच्छा तथा अनिच्छा से बहुत सी जनता को इस्लाम स्वीकार करना पड़ा और बहुत सी सुन्दर स्त्रियों को लूट में ले जाया गया।.......... नेरू दूसरा शहर था......बिना लड़े ही इसने घुटने टेक दिये.......बौद्ध सूबेदार ने राजभक्ति की शपथ ली। इसने फौज को भी खूब खुश किया। परिणामस्वरूप नेरू को छोड़ दिया गया। (परन्तु) मुहम्मद कासिम ने शहर में प्रवेश किया, और मन्दिर के स्थान पर मस्जिद बनवायी और उस स्थान की शासनव्यवस्था का इन्तजाम किया।" (वैद्य पृष्ठ १७१ और १७२)।

अब सिविस्तान पर हमला किया गया। यहां का शासक वत्सराज दाहिर का चचेरा भाई था। उसने लड़ने का इरादा किया, परन्तु बौद्ध नागरिक अपने बचाव के लिए विश्वासघाती बन गये और उन्होंने नगर के दरवाजे खोल दिये। वत्सराज किले का बचाव न कर सका और अपनी फौज के साथ भाग गया। मुहम्मद कासिम शहर में घुसा और समनी बौद्ध लोगों को छोड़ कर सम्पूर्ण शहर को उसने लूट लिया।

इसी समय कुकुरमुत्तों की तरह गद्दार लोग उठ खड़े हुए मोक बसय इनका मुखिया था। दाहिर और उसके लड़के बहादुरी से लड़े, अरबों ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि युद्धक्षेत्र की इस आखिरी लड़ाई में वे खूब वीरतापूर्वक लड़े। मुकाबला बड़ा भयंकर था, परन्तु अन्त में अरबों के श्रेष्ठ हथियारों ने विजय पायी। बहुत सी लूट के सिवाय दाहिर की

रानी, कई राजकुमारियों और दाहिर की भाँजो के साथ हजारों स्त्रियों को गुलाम बना लिया गया। दाहिर की स्त्री लाड़ी को, जिसे मुहम्मद कादिर ने पैसा देकर छुड़ाया और फिर विवाह कर लिया, छोड़ कर शेष सब स्त्रियां निःसन्देह खलीफा के पास भेज दी गयीं। दाहिर की दूसरी रानी बाई 'राओर' में ही रही और उसने कासिम का १५००० सिपाहियों से मुकाबला किया। परन्तु यह अनुभव कर कि वे इन चाण्डालों और गोमांस खाने वालों के पंजों से नहीं बच सकती उसने और दूसरी बहुत सी राजपूत स्त्रियों ने एक घर में प्रवेश कर उसे आग लगा दी और जल कर भस्म हो गईं।

"पहले समय में भी भारतीय आपस में ही लड़े थे और कभी २ विजित राजाओं की रानियों को अपना लिया था। परन्तु इन उदाहरणों में कभी जबर्दस्ती नहीं की गई। यदि वे विजेता की पत्नी या रखैल बनने से इन्कार कर देती थीं, तो उन्हें सेविकाओं के रूप में रहने दिया जाता था या उन्हें बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में अथवा दूसरे ढङ्ग से एकान्तवास करने दिया जाता था। परन्तु मुसलमान विजेताओं का मामला बिल्कुल दूसरा था। वे स्त्रियों को जबर्दस्ती व्याह लेते थे या उन्हें रखैल या गुलाम बना लेते थे अथवा उन्हें मुसलमान बनने के लिये बाधित करते थे।" राओर को जीत लिया गया और लूट लिया गया। लड़ाकू आदमियों का कत्लेआम कर दिया गया और औरतों को गुलाम बना लिया गया। शाहनामा में कहा गया है कि "राजघराने की कई सुन्दर स्त्रियों सहित सब मिला कर कुल ६०००० गुलाम थे।" लूट की न्याईं इन्हें भी सरकार और सिपाहियों के बीच बांट लिया गया।" (वैद्य पृष्ठ १८० और १८१)।

"ब्राह्मणवाद का भी उसी रीति से पतन हो गया। व्यापा-

रियां तथा दूसरे न लड़ने वाली जनता ने अपने को मुहम्मद कासिम की दया पर छोड़ कर फाटक खोल दिये। एक दम शहर पर अधिकार कर लिया गया, व्यापारियों पर रहम किया गया (कत्ल नहीं किया गया), और योद्धाओं को कत्ल कर दिया गया और शहर लूट लिया गया। स्त्री गुलामों पर कब्जा कर लिया गया। इनमें दाहिर की दो कुमारी लड़कियां भी थीं। इन्हें लूट के पांचवें शाही हिस्से के साथ खलीफा के पास भेज दिया गया। (वैद्य पृष्ठ १८२)।

"दाहिर की इन कुमारी कन्याओं ने खलीफा को यह कह कर धोखा दिया कि मीरकासिम ने उन्हें अल्लाह के खलीफा के पास भेजने से पूर्व भ्रष्ट कर दिया है। कासिम को हुक्म दिया गया कि वह जहां भी हो अपने को कच्चे चमड़े में बन्द कर सीधा खलीफा के पास आ जाय।" मुहम्मद कासिम ने हुक्म को शब्दशः माना। जब ताजे चमड़े के अन्दर सिया हुआ उसका शरीर बगदाद पहुँचा और उसकी लाश बाहर निकाली गई उस समय दाहिर की कुमारी कन्याओं ने समझ लिया कि उन्होंने बदला ले लिया।

सिन्ध में मुसलमान मजबूती से जम गये परन्तु इस्लाम विजय की लहर और इसके परिणामस्वरूप होने वाले अत्याचार ३०० वर्षों या इससे अधिक के लिए रुक गये।

भारत में इस लम्बी शान्ति के बाद सन् ९९७ ई० में अपने पिता की मृत्यु के बाद महमूद गजनी की राजगद्दी पर बैठा। उसने "अपनी सरहद के पूर्वी देशों की सम्पत्ति और वैभव के सम्बन्ध में बहुत कुछ सुन रखा था उसने खुदा से मनौती मांगी थी कि यदि उसके देश में शान्ति रही तो वह हिन्दुस्तान

के मूर्तिपूजकों विरुद्ध जिहाद छेड़ देगा और मुल्क से मूर्ति-पूजा को खत्म कर देगा और इसके स्थान पर सच्चे एक खुदा की उपासना प्रारम्भ करवा देगा"......अगस्त सन् १००१ ई० में उसने गजनी से पेशावर के लिए कूच कर दिया (लतीफ-'पंजाब', पृष्ठ ८८) लाहौर के राजा जयपाल ने उसका मुकाबला किया पर हार गया। उसके ५००० आदमी मारे गये तथा विजेताओं ने लाखों की लूट हासिल की।

महमूद अपने दूसरे आक्रमण में २८० हाथियों तथा दूसरे लूट के सामान के साथ बहुत से गुलाम ले गया। यह घटना १००४ ई० में हुई।

सन् १००५ में महमूद फिर भारत लौटा और उसने मुल्तान जीत लिया। २०००० सुनहरी मोहरें भेंट स्वरूप हर वर्ष लेने का वायदा कर वह अपनी राजधानी को लौट गया।

सन् १००६ में महमूद ने चौथी बार भारत पर चढ़ाई की। हिन्दू से नौमुस्लिम बनने वाले सेवकपाल, जिसने बगावत खड़ी की थी, को जिन्दगी भर कैद तथा ४ लाख मोहरें दण्ड-स्वरूप वसूल करके वह राज्य को लौट गया।

सन् १००८ में छटा हमला हुआ। पेशावर के दर्रे पर हिंदुओं की एक संयुक्त सेना इकट्ठी हुई, जिसके साथ पंजाब की पहाड़ी जाति के ३०००० कक्कड़ भी मिल गये। कक्कड़ों ने पहले तो मुसलमानी फौज को हरा दिया और ५००० को मार डाला; परन्तु मुसलमान फिर इकट्ठे हुए और उन्होंने हिन्दू फौज को शिकस्त देकर बहुत बड़ी संख्या को कत्ल कर डाला।

इस बार पहली बार महमूद में भारत में इस्लाम के प्रचार

का मजहबी जोश भड़का। वह नगरकोट (वर्तमान कांगड़ा) के पवित्र शहर की ओर चढ़ दौड़ा और उसने हिन्दू मूर्तियों को तोड़ डाला और उनके मन्दिरों को जमीन से मिला दिया।"

सन् १०१३ ई० की सातवीं चढ़ाई में महमूद ने "काश्मीर की सारी दौलत लूट ली, और वहां के बाशिन्दों को पैगम्बर के मजहब को मानने के लिये मजबूर किया और बड़ी लूट के साथ अपनी राजधानी को लौट गया।"

दो साल बाद उसने आठवीं बार भारत पर चढ़ाई की परन्तु काश्मीर के विरुद्ध अपने धावे में वह असफल रहा।

सन् १०१७ की वसन्त ऋतु में महमूद ने भारत पर नौवीं बार चढ़ाई की। कन्नौज के राजा ने शान्ति के लिये प्रार्थना की। हरदत्त ने घुटने टेक दिये। महवान को नष्ट कर दिया, इस स्थान के राजा ने अपनी रानी, बच्चे तथा अपनी हत्या कर डाली थी। इसके बाद महमूद ने कृष्णार्पण हुए मथुरा के धनी शहर की ओर कूच किया, थोड़े से विरोध का मुकाबिला कर उसने शहर को लूट मार के लिये छोड़ दिया। सब मूर्तियां तोड़ डाली गईं, अधिकांश मन्दिर नष्ट कर दिये गये और सोने चांदी की अपार राशि लूट में चली गयी। महमूद कन्नौज में २० दिन तक ठहरा, इस सारे समय में शहर आग और लूट का शिकार बना रहा।" लूट से लदा हुआ तथा अधिकृत वस्तुओं के भार के साथ वह गजनी लौट गया।

१०२१ ई० में ११वीं चढ़ाई में लाहौर का शहर लूट लिया गया और महमूद ने इसका नाम लाहौर से बदल कर महमूदपुर कर दिया।

१०२३ में ११वीं चढ़ाई के परिणामस्वरूप कुछ और राजाओं ने पराजय स्वीकार की। अगले साल महमूद भारत में बारहवीं बार आया और सोमनाथ के मन्दिर को लूटने की प्रतिज्ञा की। हिन्दू इस मन्दिर का बहुत आदर करते थे। रास्ते में महमूद ने अजमेर लूटा और दूसरे किलों को जीतता हुआ तेजी से सोमनाथ पहुंच गया। "किले के राजपूत बड़ी मजबूती से रक्षा कर रहे थे तीन दिन तक लगातार मुसलमानों के हमलों को भारी हानि के साथ बेकार कर दिया गया। अन्त में महमूद अपने घोड़े से कूद पड़ा और जमीन पर दण्डवत् पड़ गया और खुदा से मदद की दुआ की। घोड़े पर सवार होकर........उसने अपने सिपाहियों को इतने जोश से उत्साहित किया कि इन्होंने किले पर हल्ला बोलकर कब्जा कर लिया और रक्षक सेना के ५००० आदमियों को अपने पैरों तले मरा छोड़ दिया।" जो अपनी जान बचाने के लिये नौकाओं में चढ़ गये उन्हें डुबो दिया गया। मन्दिर में घुसने पर महमूद की नजर मूर्ति की नाक पर गयी। इसपर उसने हुक्म दिया कि मूर्ति के दो टुकड़े कर गजनी ले जाये जांय। एक टुकड़े को बड़ी मस्जिद की देहली पर डाल दिया जाय और दूसरे को उसके महल के बाहरी दरवाजे पर। साथ ही दो टुकड़े मक्का और मदीना भेजे जांय।" मूर्ति को टुकड़ों में विभक्त कर दिया गया, लूट के दूसरे सामान के साथ करोड़ों रुपये के कीमती पत्थर ले जाये गये।

सन् १०२७ में महमूद का तेरहवां तथा आखिरी हमला सिन्धु की जाट जातियों के विरुद्ध हुआ। इन्हें हरा दिया गया।

महमूद गजनवी के इतिहास को देखने से मालूम पड़ता है कि उसके हमले जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन करने की अपेक्षा

लूट के उद्देश्य से अधिक हुए थे। तो भी हजारों स्त्री पुरुष कैदियों के रूप में जिन्हें गुलाम बनाकर ले जाया गया, हिन्दू समाज को एक स्थायी नुक्सान उठाना पड़ा तथा गिनती में स्वाभाविक बढ़ती में एक भावी बाधा का कारण उत्पन्न कर दिया।

यदि हम मूल मुसलमान ऐतिहासिकों की साक्षी लें तो हमारे पास पर्याप्त सामग्री हो जायगी जिसके आधार पर हिन्दुओं के इस्लामी धर्म परिवर्तन में ताकत का मुख्य हिस्सा रहा है यह सिद्ध किया जा सकता है, परन्तु इन्हें और इनके अंग्रेजी अनुवादों को एक ओर छोड़ कर मैं डाक्टर पी० डब्लू० आरनोल्ड के ग्रन्थ " इस्लाम की शिक्षा" के उद्धरणों से ही सन्तुष्ट रह जाऊंगा, क्योंकि यह सज्जन मुसलमानी मजहब के प्रति अपने पक्षपात के लिये सुप्रसिद्ध हैं।

आप इस स्थापना से प्रारम्भ करते हैं कि "६ करोड़ ६० लाख भारतीय मुसलमानों में मुसलमानी मज़हब को स्वीकार करने वाले या उनके वंशजों की ही बड़ी संख्या है, जिन के धर्म परिवर्तन में बलप्रयोग का कोई हिस्सा नहीं है और वे केवलमात्र शान्त प्रचारकों की शिक्षाओं और प्रेरणाओं से ही मुसलमान बने हैं।" परन्तु उपर्युक्त स्थापना के लिए एक अकल्पित क्षमायाचना के बाद उसे अनिच्छा पूर्वक यह मानने के लिये बाध्य होना पड़ता है कि आक्रान्ताओं में जिनके साथ कोई प्रचारक या उपदेशक नहीं था, " बहुत से ऐसे थे जिन्हें हिन्दुस्तान पर आक्रमण जिहाद-धर्मयुद्ध की रोशनी में दीख पड़ता था। महमूद गज़नवी और तैमूर के दिलों में ऐसे ही ख्याल चक्कर काट रहे थे। दिल्ली विजय के बाद तैमूर ने अपनी 'आत्मकथा' में लिखा था 'मुझे दिल्ली में पन्द्रह दिन होगये हैं। मैंने यह समय आनन्द एवं

भोगविलास में-शाही दरबार बुलाने तथा बड़ी दावतों को देने में बिताया है । इस के बाद मुझे अनुभव हुआ कि मैं तो काफिरों के विरुद्ध लड़ाई करने आया हूँ, मेरा उद्देश्य इतना अच्छा है कि जहां कहीं भी गया हूँ विजयी हो रहा हूँ । विरोधियों के प्रति मैंने जीत हासिल की है । कुछ लाख काफिरों और बुतपरस्तों को मैं मौत के घाट उतार चुका हूँ और मैंने ईमान के दुश्मनों के खून से अपनी तलवार को रंग दिया है । अब जब कि यह शानदार जीत होगयी है तो मैं अनुभव करता हूं कि मुझे आराम से समय बर्बाद नहीं करना चाहिये था अपितु हिन्दुस्तान के काफिरों के विरुद्ध जिहाद में अपने को लगा देना था ।' (पृष्ठ २५६)

आगे वह फिर कहता है:—

" यह सच है कि काफिर हिन्दुओं पर हमला करने से पूर्व इस्लाम स्वीकार करने का न्योता दिया जाता है । ऐसी मांग को ठीक समय पर मान लेने में कई बार भय का भी हिस्सा होता था, इन धमकियों से हुआ धर्म परिवर्तन मुसलमानी आक्रमण के प्रारम्भिक दिनों में क्षणिक होते थे............... " (वही) बुलन्दशहर के हरदत्त राय के विरुद्ध लड़ाई का उल्लेख करता हुआ महमूद का मुहर्रिर लिखता है "अन्त में महमूद बावला (बुलन्दशहर का पुराना नाम) के किले पर पहुँच गया । इस इलाके का राजा हरदत्त था । जब हरदत्त ने अल्लाह के सुरक्षित सूरमाओं की चढ़ाई का हाल सुना, कि वे सागर की लहरों की न्याई बढ़े चलते थे, उन के सब ओर फरिश्ते हैं तो वह अत्यन्त उत्तेजित होगया, उस के पैर कांप गये और वह अपनी जिन्दगी के लिये व्याकुल होगया जो कि खुदा के कानून के अनुसार गंवायी जा चुकी थी । इस लिये उसने निश्चय किया कि उसकी सुरक्षा इस्लामी मजहब

को मान कर ही हो सकती है क्योंकि खुदा की तलवार म्यान से खींच ली गई है और सजा का कोड़ा तान लिया गया है। इसलिये वह दस हजार आदमियों के साथ आया। सब ने धर्मपरिवर्तन के लिये अपनी बेचैनी का तथा मूर्तिपूजा छोड़ने का ऐलान किया।" (पृष्ठ २५७)

यदि इसे जबरदस्ती धर्म-परिवर्तन नहीं कह सकते तो इस्लाम में बलात् धर्म परिवर्तन को ढूंढ़ना व्यर्थ है। आरनल्ड की पुस्तक से अब मैं कुछ उद्धरण और दूंगा, जिससे उनकी कहानी अपने आप मालूम पड़ जायगी।

(१) " उत्तरी पंजाब के पहाड़ी जिलों की जंगली जाति-कक्कड़ों ने प्रारम्भिक आक्रान्ताओं को बहुत तंग किया था। इन्हें १२ वीं शताब्दी में मुहम्मद गोरी के दबदबे से धर्मपरिवर्तन करना पड़ा।" (पृष्ठ २५८)

(२) " इब्नबतूता के अनुसार खिलजी ने यह प्रथा जारी कर इस्लाम स्वीकार करने वालों को बढ़ावा दिया था कि प्रत्येक नौ मुस्लिम को सुल्तान की खिदमत में पेश किया जाय, जिसे वह उसके ओहदे के अनुसार सुनहरा बाजूबन्द, तावीज तथा इज्जत लायक पोशाक पहनाता था.............. फिरोजशाह तुगलक अपनी आत्मकथा में लिखता है " मैंने अपनी काफिर प्रजाओं को बढ़ावा दिया कि वे पैगम्बर के मजहब को मान लें और मैंने ऐलान कर दिया कि जो कोई खुतबा दोहरा देगा, उसे जजिया या जन-कर से छुटकारा मिल जायेगा। जनता को जब इस की खबर मिली, तो हिन्दू बड़ी संख्या में वहां पहुँचे और इस्लाम स्वीकार कर लिया। इस प्रकार वे दिन प्रति दिन सब जगहों से आने लगे और इस्लाम मानने लगे परिणामस्वरूप जजिया से

मुक्त किये जाने लगे और खिल्लत तथा इज्जत से अनुगृहीत किये जाने लगे।" (पृष्ठ २५०) कुछ मुख्य मुसलमानो रियासतों में दूसरे धर्मों से मुसलमान बनाने की यह रीति अब भी प्रचलित है।

(३) कहा जाता है कि औरङ्गजेब की हकूमत के सिवाय हिन्दुओं के ऊपर निरन्तर सरकारी दबाव कभी नहीं पड़ा। पंजाब के पूर्वी जिलों में बहुत सी जातियां इस प्रकार की हैं जिन में गांव की मुसलमान बिरादरी का कोई पुराना "गाव की जमीन को बचाने के लिये" मुसलमान होगया था। दिल्लो के पास गुड़गांव में एक हिन्दू बनियों का परिवार है, जिनके नाम के साथ शेख उपनाम लगाया जाता है (जो कि मुसलमान बने हुए हिन्दू अपने नाम के साथ लगाया करते हैं)। इस परिवार का एक सदस्य जिस की सन्तान परम्परा अब नहीं बची है, परिवार सम्पत्ति को जप्ती से बचाने के लिये मुसलमान बन गया था। इसी कारण से कानपुर के बहुत से राजपूत जमीदारों को मुसल-मान बनना पड़ा था। (मुसलमानों में दीक्षित परिवार इसका एक उदाहरण है और दूसरे वे उदाहरण हैं कि जो औरङ्गजेब के समय में गैरमुस्लिम काश्तकार मुस्लिम अत्याचार से या कभी कभी लगान दे सकने में असमर्थ होने पर अपने अधिकारों की रक्षा के लिये धर्म को बदल लेते थे।) दूसरे उदाहरणों में कोई पूर्वज कैदी या बन्धक के रूप में दिल्ली ले जाया गया था और वहां जबर्दस्ती खतना करवा कर मुसलमान बना दिया गया था.......बिना किसी सदेह के यह सिद्ध किया जा चुका है कि मुसलमान शासकों ने जबर्दस्ती धर्म परिवर्तन किये हैं और यह सम्भव मालूम पड़ता है कि औरङ्गजेब की अपने मजहब के प्रति धर्मान्धता ने उत्तरी भारत के बहुत से परिवारों को धर्म बदलने के लिये विवश किया हो। यही कारण बहुत सम्भव

प्रतीत होता है। इसी तरह से दक्षिण में औरंगजेब तथा हैदर-अली और टीपू सुल्तान ने अनेक परिवारों तथा आबादी के एक हिस्से को मुसलमान बनाने में नामवरी हासिल की है। (पृष्ठ १६० और १६१)

(४) टीपू सुल्तान ने ऐलान कर दिया था कि यदि दक्षिण के हिन्दू बहुपतित्व को बन्द न कर देंगे तो वह उनके विरुद्ध चढ़ दौड़ेगा। इससे मलाबार में विद्रोह का झण्डा खड़ा होगया और टीपू २०००० से अधिक की फौज लेकर चल पड़ा और उसने यह सामान्य आज्ञा निकाल दी "बिना किसी भेदभाव के जिले के प्रत्येक प्राणी को मुसलमान बना लिया जाय और जो कोई भागने का प्रयत्न करे, उसके घर में आग लगा दी जाय और उनके छिपने के स्थानों पर उनका पता लगाया जाय और सब को मुसलमान बनाने के लिये सच्चे झूठे, ताकत तथा छल कपट के सब उपायों को काम में लाया जाय।" परिणाम स्वरूप हजारों हिन्दुओं को खतना कर दिया गया और गोमांस खाने के लिये विवश किया गया............(पृष्ठ २६२)

(५) एक हिन्दू जाति बिश्नोइयों में अभी कुछ समय पूर्व तक कुछ रीतिरिवाजों में निष्फल एवं झूठे धर्म परिवर्तन के कुछ विचित्र अवशेष पाये जाते थे। इन्होंने विष्णु के अतिरिक्त दूसरे देवी देवताओं को मानना छोड़ दिया था। वे अभी हाल तक अपने मुर्दों को जलाने के स्थान पर भूमि में गाड़ते थे। ये अपने नाम गुलाम मोहम्मद या ऐसे ही दूसरे मुसलमानी नाम रखते थे और मुसल्मानी ढंग से ही सलाम आदि करते थे। इन मुसल्मानी रीतिरिवाजों को अपनाने में इन्होंने कारण बताते हुए कहा कि एक बार एक विधवा के सती होने में एक काजी के हस्तक्षेप करने पर उसे मार डाला गया था। इस अपराध के दण्ड से छूटने के लिये

उन्हें मुसलमान बनना पड़ा। इन्होंने अब इन रीतिरिवाजों के स्थान पर हिन्दू सामाजिक प्रथाओं का अवलम्बन करना शुरू कर दिया। (पृष्ठ २६२ और २६३)

बिजनौर तथा आस पास के जिलों में ये बिश्नोई रहते थे और आर्य प्रचारकों ने उन्हें उन के प्राचीन धर्म में प्रवेश करवाया है।

(६) हिन्दुओं के इस्लाम प्रवेश में बहुत बार स्वार्थ भी मूल कारण रहा है "इस रीति से बहुत से राजपूत मुसलमान बन गये और उनके उत्तराधिकारी आज भी जमींदार सम्भ्रान्त समाज में पाये जाते हैं। इन में सबसे महत्वपूर्ण बछगोती परिवार की मुसलमानी शाखा है, जिसका मुखिया अवध का एक प्रमुख मुसलमान नवाब है। एक किम्वदन्ती के अनुसार इनके एक पूर्वज तिलोकचन्द को बादशाह बाबर ने कैद कर लिया था, और छुटकारा पाने के लिये इसने इस्लाम स्वीकार कर लिया। एक दूसरी कहानी के अनुसार इसका धर्म परिवर्तन हुमायूं के शासन काल में हुआ। इस बादशाह ने तिलोकचन्द की स्त्री की अद्भुत सुन्दरता के बारे में सुन रखा था। एक बार जब उसकी स्त्री एक मेले पर गयी हुई थी तो उसे उठा ले जाया गया। अन्त में उसे छोड़ दिया गया, इस उपकार स्वरूप तिलोकचन्द और उसकी पत्नी ने इस्लाम स्वीकार कर लिया। दूसरी कहानी देखते ही असत्य मालूम पड़ती है।

"बुलन्दशहर जिले में लालखानी पठान नाम का एक बड़ा मुस्लिम कुनबा है। यह अभी तक पुराने हिन्दू उपनामों और परिवार के विवाह सम्बन्धी रीतिरिवाजों का पालन करता है। इस परिवार की हिन्दू शाखायें भी इसके पास ही फल फूल रही हैं। मिर्जापुर

जिले के गहरवार राजपूत जो कि अब मुसलमान हैं, सब घरू मामलों में हिन्दू कानून और रीतिरिवाजों का पालन करते हैं तथा अपने मुसलमानी नामों के साथ आदर सूचक हिन्दू उपनाम लगाते हैं। (पृष्ठ २६०)

उपर्युक्त तथ्य एक यूरोपियन लेखक से लिये गये हैं जो भारत के मुसलमानों के प्रति अपने पक्षपात में मूल मुसलमान ऐतिहासिकों को भी मात दे देता है। परन्तु यदि हम मुस्लिम भारत के सर्वसम्मत विश्वस्त ऐतिहासिक फरिश्ता पर विश्वास करें तो बाबर और उसके मुगल उत्तराधिकारियों के पहले आने वाले मुसलमान बादशाह मजहबी कट्टरपन और धर्मान्धता में बहुत बुरी बातों पर भरोसा करना पड़ेगा। कुछ उदाहरण यहां पर असङ्गत न होंगे।

(७) सन् १२३१ ई० में शम्सुद्दीन अल्तमश ने भिलसा के हिन्दू किले को जीता और महाकाली को समर्पित एक भव्य मन्दिर को नष्ट कर डाला। मन्दिर को प्रतिष्ठित करने वाली विक्रमादित्य और महाकाली की मूर्तियाँ दिल्ली ले जायी गईं और बड़ी मस्जिद के "दरवाजे पर तोड़ दी गईं।" (पृष्ठ २३४, जान ब्राइट द्वारा अनूदित)

(८) "गयासुद्दीन बलबन ने यह नियम बना लिया था कि किसी भरोसे और ताकत की जगह पर किसी हिन्दू को नियुक्त न किया जाय, कहीं वे अपने प्राप्त अधिकारों को मुसलमानों के विनाश में काम में न लायें।"

इस सम्बन्ध में कोई शिकायत नहीं होनी चाहिए क्योंकि

अंग्रेज हिन्दुस्तानियों—हिन्दुओं और मुसलमानों से समान अविश्वास से व्यवहार करते हैं।

(६) अलाउद्दीन खिलजी ने अपने काजी से पूछा था"······ हिन्दुओं के किस वर्णन से आज्ञापालन और कर देना कानून सम्मत है।"

इसका जवाब था·······"सब काफिरों से राजभक्ति और कर-प्राप्ति कानूनसम्मत है और उन्हें ही राजभक्त समझा जा सकता है जो जजिया तथा खिराज बिना किसी प्रकार की झिचक के दे। यदि हो सके तो इसे ताकत से भी प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि पैगम्बर के एक कानून के अनुसार काफिरों के लिए लिखा गया है:—"वे जिस हद तक दे सकें उतना महसूल लगा दिया जाय या उन्हें बिल्कुल नष्ट कर दिया जाय। पैगम्बर ने इस्लाम के अनुयायियों को हुकम दिया है "उन्हें कत्ल कर दो या उन्हें ईमान में ले आओ" पैगम्बर के शब्दों में अधिकतम (सजा) रखी गयी है। तो भी परिणामस्वरूप इमाम हनीफ का विचार है कि जितना अधिक बर्दाश्त कर सकें उतना जजिया तथा खिराज लगा देना चाहिए और इसके पूरा न होने पर मौत की सजा दे देनी चाहिए और इसके अनुसार उसने मना कर दिया कि उनका खून व्यर्थ ही न बहाया जाय। इसलिये यह आज्ञा दे दी गयी कि उनसे अन्तिम दमड़ी तक जजिया और खिराज वसूल किये जाने चाहिये और सजा लगभग मौत होनी चाहिये।" बादशाह मुस्कराया और बोला "·········तुम अनुभव कर सकते हो कि विद्वतापूर्ण किताबें पढ़े बिना ही पैगम्बर की आज्ञाओं को अपने आप ही क्रियारूप में परिणत करने का अभ्यासी होगया हूँ।"

इतिहास साक्षी है कि किस प्रकार पेगम्बर द्वारा लिखे गये कानून का खिलजी बादशाह ने अपने खूनी सिपहसालार मलिक काफूर द्वारा प्रति-अक्षर पालन करवाया।

(१०) फिरोज तुगलक ने नगरकोट पर हमला करते हुए मूर्तियां तोड़ डालीं और उनके टुकड़ों को गोमाँस के लोथड़ों से मिलवा कर बोरों में भर ब्राह्मणों के गलों में बन्धवा दिए। गया फिर उनका सारी छावनी में चक्कर लगवाया गया। इस रीति से वे इस्लाम के सन्देश से पवित्र किये गये।

(११) निष्ठुरता तथा हिंसा के कई कार्यों के लिये सिकन्दर लोदी का शासन स्मरणीय रहेगा। एक ब्राह्मण को सुल्तान सम्मुख विचारार्थ उपस्थित किया गया क्योंकि उसने कहा था "कि यदि सचाई से अमल किया जाय तो मुसलमानों और हिन्दुओं के धर्म समानरूप से परमात्मा को स्वीकार्य हैं।" सुल्तान ने ब्राह्मण को काजी पियोला और शेख बद्र के सामने विचार के लिये पेश किया। कौन सा फतवा उद्घोषित किया जाय, इस बारे में दोनों का मतभेद रहा। अन्त में बारह मुल्ला इकट्ठे हुए जिन्होंने ब्राह्मण से बहस की। ब्राह्मण को समझा सकने या चुप करने में असमर्थ हो विद्वान मुसलमान मुल्लाओं ने फतवा दिया कि यदि काफिर अपनी गलती न मान ले और मुसलमानी धर्म स्वीकार न करले तो उसे मौत की सजा भुगतनी पड़ेगी। धर्म छोड़ना स्वीकार न करने पर हिन्दू को फांसी दे दी गई।

सन् १५०४ ई० में मुन्दरिल पर कब्जा करके सिकन्दर लोदी ने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर डाला और उनके स्थान पर मस्जिदें बनवायीं।

१५०६ ई० में सिकन्दर ने हनवन्तनगर जीत लिया, राज की

छावनी नष्ट कर डाली और हिन्दू मन्दिरों को ढवा कर उनकी जगह मस्जिदें बनवाईं। सन् १५०१ में वह नरवार में छः मास तक मन्दिर तुड़वाता और मस्जिदें बनवाता रहा। सिकन्दर लोदी के बारे में फरिश्ता लिखता है:—"मुसलमानी मजहब में वह गहरा विश्वास रखता है और उसने सब मन्दिरों को तुड़वाने का पक्का इरादा कर लिया है। मथुरा शहर में नहाने की पौड़ियों के सामने, जहां से नदी का रास्ता जाता था, मस्जिदें और बाजार बनवाया और हुक्म दिया कि कोई हिन्दू वहां नहा नहीं सकता। शहर निवासियों की दाढ़ी और सिरों के बालों को काटने की नाइयों को मुमानियत करदी गई जिससे वे ऐसी तीर्थयात्रा में अपनी विधियों को पूरा न कर सकें। गद्दी पर बैठने से पहले एक बार उसकी एक सन्त पुरुष से तकरार हो गयी जिसने कहा था कि शासक को यह शोभा नहीं देता कि वह प्रजा को उसके धर्म के पालन से रोके तथा युगों से जिन स्थानों पर आकर वे नहाने के अभ्यासी हो गये हैं, वहां उन्हें नहाने से रोका जाय। शाहजादे (सिकन्दर) ने म्यान से तलवार निकाल ली और कहा—"क्या तुम हिन्दू मजहब को दुरुस्त ठहराते हो?"

थोड़ी देर के लिए मैं यहां पर रुक कर पाठक से कहना चाहता हूँ कि वह भारत में मुसलमान बादशाहों की क्रूर कट्टरता द्वारा हिंदू धर्म के प्रति किये गये नुकसान की गहराई को अनुभव करें। इस पर भी क्या कोई आश्चर्य है कि लाखों और लाखों हिन्दू इस्लाम में जबर्दस्ती ले लिये गये और उनके उत्तराधिकारी करोड़ों की गिनती में पहुंच गये !!

ईसाईयत द्वारा जबर्दस्ती धर्मपरिवर्तन

भारत में सर्व प्रथम आने वाले ईसाई पादरी, जिन्होंने

पूरे जोश से ईसाई बनाना शुरू किया-जेस्युइट लोग थे। युरोपियनों में पुर्तगाली या ओलन्देज लोग ही सर्वप्रथम थे जो वास्को-द-गामा के पथ प्रदर्शन में दक्षिणी भारत में उतरे थे और सारे मलाबार तट पर अधिकार कर लिया था। ईसाईयत को मानने वाले कुछ आदमी उसे मिले परन्तु उनकी ईसाइयत में इतनी अधिक बुतपरस्ती मिली हुई थी कि उस समय का ईसाई शासक कांप गया और उसने फ्रेंसिकन पादरियों को भेजा जिससे उसकी मूर्तिपूजक प्रजा में सच्चे धर्म का फैलाव हो सके। '-जेस्युइट्स, एक पूरा इतिहास" शीर्षक के महत्वपूर्ण ग्रन्थ में जर्मन राजनीतिक-पत्रकार थियोडोर ग्रिसिन्गर ने भारत में रोमन कैथोलिक ईसाई पादरियों के सम्बन्ध में एक स्पष्ट वर्णन किया है। इस सहजगम्य ऐतिहासिक ग्रन्थ का जर्मन भाषा से अङ्गरेजी में अनुवाद श्री ए. जे. स्मिथ, एम० डी० ने किया है। पुस्तक का प्रकाशन इण्डिया आफिस, लन्दन के प्रकाशक डब्ल्यू० ऐच० ऐलन एण्ड कम्पनी ने सन् १८६२ में प्रकाशित की है। इसी पुस्तक से मैं बहुत से उद्धरण दूंगा।

"इस तरह के काम के लिये फ्रेन्सिस्कन्स बहुत असफल सिद्ध हुए। मालूम हुआ कि धर्म परिवर्तन या 'मूर्तिपूजा के प्रति कार्य' करना उनके बस की बात नहीं, यद्यपि गवर्नर-वायसराय अल्फान्सो अल्बुकर्क ने फौजी ताकत की सारी संगीनें उनकी मर्जी पर छोड़ दी थीं............भारतीय वैसे के वैसे ही रहे और अपने देवताओं की अपने पिताओं तथा पूर्वजों की रीति से पूजा करते रहे। यद्यपि कुछ थोड़े से फौजी दबाव से पोप के अनुयायी बन गये थे, परन्तु जनता का अधिकतर हिस्सा ब्रह्मा और विष्णु की उपासना में ही लगा रहा।" (पृष्ठ ८६)

यह हालत देर तक नहीं सही जा सकती थी और पुर्तगाल के जान

तृतीय जो १५२१ से १५५७ तक राज्य करता रहा इससे बेचैन हो गया और सोचा "उसके नये प्राप्त किये हुए प्रदेशों के निवासी सच्चे पुर्तगाली प्रजाजन नहीं बन सकते, जब तक वे उसी क्रास के सम्मुख दण्डवत् न लेटें, जिसके आगे पुर्तगाली घुटने टेकते हैं।" इस काम के लिये फ्रान्सिस जेवियर सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति था क्योंकि उसमें धर्म परिवर्तन का जोश दूसरे सब विचारों को जीत लेता था। वह भारत में आया उसके साथ पोप की आज्ञायें भी आईं जिनसे उसे सम्पूर्ण भारत में रोम के पोप के प्रतिनिधि की स्थिति मिल गयी तथा एशियाई देशों में पुर्तगाली अफसरों के ऊपर सम्पूर्ण व्यावहारिक प्रभाव डालने का अधिकार मिल गया। अन्त में एक तीसरे फरमान द्वारा बादशाह जान तृतीय ने आशा अन्तरीप से गंगा तक के सब बादशाहों, राजाओं और सरकारों से उसकी विशेष सिफारिश की थी।"

फ्रान्सिस जेवियर ६ मई १५४२ को गोआ में उतरा... .... द्यपि शाही साजो सामान तथा राजकीय भवन उस को इच्छा पर ैर के गवर्नर ने छोड़ दिये थे परन्तु उसका ख्याल सबसे पह स्वयं हस्पताल पहुँचने का हुआ, जिससे कि वह स्वयं बीमारों की दे भाल कर सके और उसकी अपनी देख रेख लायक साधन नता के दान से एकत्र हो सकें। 'कुछ या बिल्कुल नहीं' जो कुछ ी इस ढंग से किया जाय यही उसका असली उद्देश्य था और इ लिये जेवियर ने उस स्थान के पादरी की मदद चाही। परन्तु क दूसरी दिक्कत सामने आ खड़ी हुई। "जेवियर ने उनसे क्या कथ-इसका एक शब्द भी मूर्ख बाशिन्दों ने समझ नहीं पाया और इस्राइल ने उसे किसी प्रकार वाणी की सहायता नहीं पहुँचाई।" (पृष्ठ८८)

इस पर जेवियर ने हिन्दुस्तानी पढ़नी शुरू की। साथ ही

साथ होली पाल का कालेज स्थापित किया और........वायसराय की फौजों की सहायता से उसने गोआ के पास के मूर्तिपूजकों के मन्दिरों को उखड़वा डाला और उनकी बहुत सी सम्पत्ति को नये कालेज के उपयोग और लाभ में लगा दिया।" (पृष्ठ ८६)

इसके बाद जेवियर सम्पूर्ण मलाबार में प्रचार-यात्रा पर चल दिया। उसने अपने साथ एक घण्टा लेलिया जिसके साथ सुसज्जित होकर वह दिन दहाड़े उसे बजाता हुआ गलियों में भागता था जब तक उत्सुकता से प्रेरित होकर बच्चों तथा दूसरों की टोली ठठ्ठा तथा हंसी करती हुई उसके पीछे न लग जाती थी। जब उसे इस प्रकार काफी गिनती में श्रोता मिल जाते थे तो वह एक बड़े पत्थर पर खड़ा होकर लेटिन स्पेनिश इटालियन और फ्रेंच भाषाओं के टुकड़ों से मिली हुई देश की भाषा में दोनों हाथों तथा पैरों को विचित्र ढग से हिलाता हुआ उपदेश देता था। आखिर में वह एक बड़ा क्रास निकालता था। जिसे वह बड़ी भक्ति से चूमता था और भीड़ से यही करने की प्रेरणा करता था। जो कोई यह कर लेता था उसे वह एक सुन्दर गुलाब का फूल भेंट में देता था वह हज़ारों गुलाब के फूल पुर्तगाल से लाया था। यह उसके तरीके का पूर्वार्ध ही था। उत्तरार्ध अधिक प्रभावक था वह सरकार से मांगी हुई पुर्तगाली फौज की मदद से देसी लोगों के मन्दिरों को तुड़वा डालता था और उनके स्थान पर सूली पर चढ़े ईसामसीह की मूर्ति के साथ ईसाई गिरजों को बनवा देता था और उनके पड़ोस में बांसों की एक सुन्दर इमारत बच्चों की शिक्षा के लिये बनवा दी जाती थी।...... उन्हें ईसाइयत के सिद्धान्तों से परिचित कराने के स्थान पर वह उन्हें प्रभु की प्रार्थना मन्तव्य के साथ पढ़ाता था और उन्हें समझाने की कोशिश करता था अन्त में विनय पूर्वक उनकी बाहों से क्रास

छुआता था।" (पृष्ठ ८६ और ६०)

इन्हें बप्तिस्मा लिये हुए मान लिया गया परन्तु यह सिलसिला बहुत धीमे चला। ज़ेवियर ने अपने गुरू जेस्युइटवाद के संस्थापक इगनातिन लियोला से और अधिक सहायक मंगाये। २० से अधिक सहायक भेजे गये और अब ज़ेवियर के लिये इकट्ठे ईसाई बनाने का काम सहल होगया। अगले छः सालों में जिन जिन स्थानों में पुर्तगाली झण्डे की हकूमत थी.... वहां छोटा या बड़ा स्कूल कायम होगया। धर्म परिवर्तन का मुख्य अखाड़ा गोआ का कालेज रहा, जहां यूरोप से सहायकों के आने पर ज़ेवियर ने फौजी ताकत से हिन्दू सभ्य समाज के १२० लड़के इकट्ठे कर लिये जिससे कि वे भविष्य में अपने देशवासियों को ईसाई बना सकें। पुर्तगाली संगीनों ने तथा उनसे भी अधिक इनके भय ने इस दिशा में बहुत परिणाम दिखलायें।"....(पृष्ठ ६१)

इस तरीके से जो ईसाई बनते थे "वे मन्तव्य को दोहरा सकते थे.... मामले के सम्बन्ध में कुछ जानकारी सीख सकते थे जिससे वे जलूसों में भाग लेते थे और दूसरे बाहरी समारोहों में हिस्सा ले सकते थे....' परन्तु जब ईसाई पादरी उस जगह से विदा हो जाते थे तो ब्राह्मणों को उन आदमियों के पुराने धर्म में जिस में वे पाले और पोसे गये थे लेने में कोई दिक्कत नहीं होती थी, यह वास्तव में उनको बेचैन करने योग्य उन्माद रोग था। ज़ेवियर का एक साथी औंटोन क्रिमिनल, जिसने कन्या कुमारी में ईसाई बनाये थे, इस पर ब्राह्मणों के विरुद्ध क्रुद्ध बहुत हो उठा कि उसने उन पर बहुत ही पाशविक अत्याचार किये। इस पर हताश होकर इन अपराधी और गोआ के गवर्नर से प्राप्त कुछ सिपाहियों के विरुद्ध उन्होंने मदद की पुकार मचायी.... यह जनता के उस श्रेणी

के आदमी थे जो अल्पमत वाले पुर्तगालियों की अधीनता में नहीं आये थे। परिणामतः एक लड़ाई हुई जिसमें वे अपराधी सब पुर्तगालियों के साथ मार डाले गये। इसी समय लंका में काण्डी के राजा को अपनी बांहों में क्रास लेकर जेवियर की आज्ञा से जबर्दस्ती हथियारों के दबाव से ईसाई होने के लिये बप्तिस्मा लेना पड़ा। उसके सरदारों और सूबेदारों को आदेश दिया गया था कि यदि वे बप्तिस्मे की कार्यवाही में अड़चन डालेंगे तो उनकी सम्पत्ति जप्त करली जायेगी। ईसाइयत में हजारों को इस तरीके से प्रतिदिन ले लेना बड़ा आसान था। (पृष्ठ ६१)

"इसके बाद कुछ समय तक कोई पादरी अपनी कारस्तानी दिखाने नहीं आया। ब्राह्मणों ने कड़े मुकाबले से अपनी स्थिति मजबूत नहीं की अपितु बहुत बुरा असर हुआ क्योंकि फ्रान्सिस जेवियर ने मौके का लाभ उठा कर स्पेनिश इन्क्विजिशन (पोप के विरोधियों का विचार करने का विचारालय) के ढंग का एक धार्मिक न्यायालय कायम कर दिया, इस पर बिना किसी विरोध के इसी का प्रभुत्व था। पुर्तगाली हथियारों की मदद से ईसाइयत के प्रचार में किसी तरह की बाधा पैदा करने वाले या बप्तिस्मा लेने वालों देसी लोगों को दुबारा उनके पुराने मूर्तिपूजक धर्म में लेने वालों के विरोध में अत्यन्त भयङ्कर अत्याचार करने लगा। इस तरह से असंख्य ब्राह्मण और खास तौर से "उनमें धनी व्यक्तियों ने जल्लादों के हाथों अपनी जानें गंवा दीं या समाज के लाभ के लिये सम्पत्ति के छीने जाने के डर से वे राज्य से निकाल दिये गये.........वास्तव में स्त्री स्वभाव के हिन्दुओं पर दबाव डाला गया कि वे इन्क्विजिशन की कैद से परिचय प्राप्त करने के स्थान पर बप्तिस्मा लेलें अथवा धीमी आंच पर जिन्दे भूने जाने का खतरा उठायें...' परिणामस्वरूप

सभी उपयुक्त स्थानों पर जेस्युइट कालेज खड़े होगये, जिन्हें कि कत्ल किये गये या नष्ट किये गये नास्तिकों की सम्पत्ति से मजबूत बनाया गया। और भी अधिक गिनती में गिरजाघर बनाये गये, क्योंकि अब सैकसन्स के विरुद्ध चार्ल्स महान् के क्रूर व्यवहार को उदाहरणस्वरूप रख कर मानों जेस्युइटस ने मूर्तिपूजकों के मन्दिरों को आग और तलवार की मदद से नष्ट करने में झिझक छोड़ दी हो।" (पृष्ठ ६२)

ईसाइयत की क्रूरताओं के दृष्टान्त अधिक देना व्यर्थ है। ईसाइयत का सम्पूर्ण इतिहास शान्ति के देवदूत के अनुयायियों द्वारा इन्क्विजिशन तथा गुलिटन (फांसी का यूरोपियन संस्करण) के माध्यम से मानवता पर की गयी तबाही के खेल से भरा पड़ा है।

प्रकरण ३

ताकत के सिवाय दूसरे साधनों से इस्लाम का प्रचार

इस्लाम के अपने मजहब में दीक्षित करने के कार्य में हमारे मुख्य आधार श्री टी० डब्ल्यू आरनोल्ड का कहना है कि "मुसलमानी मजहब को स्वीकार करने वाले या उनके वंशजों की ही बड़ी संख्या है, जिनके धर्म परिवर्तन में बल प्रयोग का कोई हिस्सा नहीं है और वे केवलमात्र शान्त प्रचारकों की शिक्षाओं और प्रेरणाओं से ही मुसलमान बने हैं।" यहां सवाल पैदा होता है कि खुले आम शिक्षा दी गयी, सचाई से प्रेरित किया जाता रहा अथवा इस्लाम के प्रचारक अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिये उचित साधनों को काम में लाये अथवा पूर्वजों के धर्म में विश्वास को कम करने के लिये उन्होंने भारतीयों के भोले अन्ध विश्वास का फायदा; यदि पिछले उपाय काम में लाये गये तो श्री आरनोल्ड के सुझाव के अनुसार इस्लाम के प्रचारक

अपने को धर्मभीरू कह कर बढ़ावा नहीं दे सकते। वह कहता है:—

"यद्यपि कुछ मुसल्मान शासक अपनी कुछ हिन्दू प्रजाओं को इस्लाम स्वीकार करवाने में कामयाब रहे हैं......(सर एल्फ्रेड सी० लायल के एशियाटिक स्टडीज पृष्ठ २३६ के) इस कथन में चाहे कितना ही सच हो कि 'भारत में मुसल्मानों की धार्मिक स्थिति को, उनके राजनीतिक रूप को समझे बिना जानना असम्भव है,' हम निस्सन्देह मालूम करते हैं कि इस्लाम ने उन समयों और स्थानों पर महानतम और स्थायी प्रचार सम्बन्धी विजयें प्राप्त की हैं कि जहां उसकी राजनीतिक शक्ति सबसे अधिक क्षीण थी जैसे दक्षिणी भारत और पूर्वी बंगाल में।" (पृष्ठ २६३)

श्री आरनोल्ड के वर्णन के आधार पर हम दक्षिणी भारत, दक्खिन, सिन्ध, कच्छ, गुजरात तथा फिर बंगाल में मुस्लिम प्रचार और प्रेरणा के इतिहास का शान्ति पूर्वक निरीक्षण करें देखें कि वे बुद्धि और न्याय की कसौटी पर खरे उतरते हैं या नहीं ?

१६ वीं शताब्दी के एक मुस्लिम ऐतिहासिक जयनलदीन के आधार पर आरनोल्ड सर्वप्रथम मुसल्मान बनने वालों का वर्णन करता है। आठवीं शताब्दी में दक्षिण भारत में मुसल्मान शरणार्थियों के एक गिरोह ने बस्ती बसायी थी। इन शरणार्थियों और सहिष्णु हिन्दू शासकों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध विद्यमान थे। हिन्दू शासक मुसल्मान बनाने के कार्य में किसी तरह की कोई अड़चन पेश न करते थे देसी मुसल्मानों के साथ...उनके समाज के निचली श्रेणी से सम्बन्धित होने पर भी समान व्यवहार किया

जाता था। लंका में आदम के पदचिन्हों प चलते हुए यात्रियों का एक दल क्रांगानोर पहुंचा था, जिस स्थान के राजा को उन्होंने इस्लाम की शिक्षायें समझाईं। यात्रियों के तीर्थयात्रा से लौटते समय राजा राजव्यवस्था को विभिन्न राजप्रतिनिधियों के हाथ में छोड़ कर अरब तट को जाने वाले एक जहाज में उनके साथ बैठ कर "चुपके से चला गया"। यहां वह कुछ समय तक रहा और अपने देश के लिये वहां पर मस्जिदें बनाने तथा मुस्लिम धर्म को फैलाने के इरादे से चल पड़ने वाला ही था कि वह बीमार पड़ गया और मर गया। मृत्युशय्या पर उसने अपने साथियों को आदेश दिया कि वे अपनी प्रस्तावित मलाबार-यात्रा को न छोड़े अपने साथियों को उनके प्रयत्न को सफल बनाने के लिये उसने राजप्रतिनिधियों के नाम सिफारिशी चिट्ठियां भी लिख दीं। जिस के साथ ही उसकी मौत का हाल छिपाने के लिये भी कह दिया गया।" उसके बाद मुसल्मान इतिहास लेखक विभिन्न स्थानों में मस्जिदें किस प्रकार बनी, इसका वर्णन करता है।

यह कहानी अविश्वसनीय मालूम पड़ती है, क्योंकि जब राजप्रतिनिधियों के हाथ में शासनव्यवस्था खुले आम छोड़ दी गई तब राजा की रवानगी को छिपाने की क्या जरूरत थी। वास्तव में सचाई यह मालूम पड़ती है कि राजा अरब के दौरे पर गया था, वहां वह मर गया और इस पर पवित्र मुस्लिम प्रचारकों ने उसके जाली दस्तखत बना कर राजप्रतिनिधियों को ठग लिया। आरनोल्ड भी स्वीकार करता है ऐतिहासिक रूप से इसकी कोई साक्षी नहीं है। हिन्दुओं को इस्लाम में लाने के प्रथम प्रयत्न को यहां बहुत देख लिया। "कहा जाता है कि अरब वाणिज्य के संरक्षकों में से मुख्य कालीकट के जमोरीन ने इसलाम-प्रवेश को बढ़ावा दिया था, क्योंकि उसकी बढ़ती को मुख्य

आधार अरब जहाजों को जहाजियों की जरूरत थी। इसलिये उसने हुकम दिया कि उसके राज्य के प्रत्येक मछियारे परिवार में से एक या अधिक पुरुष सदस्यों को मुसलमानों की न्याईं पालना चाहिये।" इन्हें मप्पिला या मोपला कहा जाता था। "१६ वीं शताब्दी के पूर्व में मप्पिला लोग मलाबर की जनता के पांचों हिस्से के बराबर थे। ये हिन्दुओं के समान भाषा बोलते थे और इन्हें इनकी लम्बी दाढ़ियों और खास ढंग की सिर की टोपी से ही पहचाना जाता था।"

इस प्रकार कालीकट के हिन्दू राजा के लालच और स्वार्थ परायणता ने तथा हिन्दुओं के 'मुझे न छुओ' के कुसंस्कार ने दक्षिणी भारत में इस्लाम का प्रवेश करवाया न कि मुसलमान प्रचारकों के प्रचार और प्रेरणा से। आरनोल्ड आगे लिखता है "यदि पुर्तगाली लोग न आजाते इस समुद्रतट के सम्पूर्ण निवासी मुसलमान होगये होते क्योंकि गुजरात तथा दक्षिण के भारतीय हिस्सों तथा अरब और फारस के मुस्लिम व्यापारियों के जबर्दस्त प्रभाव से निरन्तर इस्लाम में प्रवेश हो रहे थे।" परन्तु पुर्तगाली ईसाइयों के इस दैवी हस्तक्षेप से मलाबार की हिन्दू जनता की रक्षा होगयी? "कड़ाही से निकल कर आग में पड़ने' का यह अच्छा उदाहरण है, इसका दक्षिण भारत में ईसाई मिशनों का इतिहास साक्षी है।

कालीकट के जमोरीन राजा की अपने मछियारे प्रजाजनों के एक हिस्से को मुसलमान बनाने की उत्कण्ठा को सुन कर तिमुरिद शाह रुख बहादुर ने वहां इस्लाम को फैलाने के कार्य को अधिक बढावा देने के लिये अब्दुल रज्जाक को भेजा परन्तु "जैसा कि मालूम पड़ता है कि उसे सफलता नहीं मिली क्योंकि छः मास तक वहां रहने के बाद उसने मूल उद्देश्य छोड़ दिया"

और खुरासान लौट गया।

इसके बाद आरनोल्ड नाथुर शाह का वर्णन करता है इसने त्रिचनापल्ली के सुल्तान लोगों को तथा लड़ाकू योद्धा सैय्यद इब्राहीम शहीद, जिसके लड़के के वंशज ईनाम में दी गयी भूमि का फायदा आज भी उठा रहे हैं, मुसलमान बना लिया था। शाह अलहमीद का भी उल्लेख किया गया है, नागोर में जिसकी कब्र आज भी पूजी जाती है। दुन्देकुलों को बाबा फखरूद्दीन ने मुसलमान बनाया था, जिसकी कब्र पेनुकोण्डा में आज भी विद्यमान है। कहा जाता है कि उसने एक हिन्दू पुजारी से करामात करने में होड़ की थी। दोनों को चूने के बोरों में बन्द कर तालाब में डाल दिया गया। "हिन्दू पुजारी ने फिर सिर न उठाया, परन्तु बाबा फखरूद्दीन ने नगर से बाहर एक पहाड़ी पर आश्चर्यजनक रूप से प्रकट होकर अपने ईमान की महत्ता को दिखा दिया। इस पर राजा मुसलमान होगया और उसके उदाहरण पर आस पड़ोस के बहुत से निवासियों ने अनुकरण किया और मन्दिर को मस्जिद में बदल दिया गया।"

आश्चर्य यह कि ये चमत्कार अपने अभाव से उस समय प्रसिद्ध हुए, जिस समय एक भी ऐसा चमत्कार उस सम्पूर्ण रक्तपात को समाप्त कर देता, जिनसे वर्तमान भारत का इतिहास अपमानित हो रहा है।

तिय अछूतों और कभी २ अब्राह्मण नायरों और देसी ईसाइयों का जो मलाबार में मुसलमान बन जाते थे, आरनोल्ड वर्णन करता है परन्तु उसी के साथ २ वह लिखता है—"हिंदुओं से इतनी बड़ी संख्या में धर्म परिवर्तन हुए कि दक्षिणी भारत के पश्चिमी और पूर्वी किनारों पर रहने वाले मुसलमान हिन्दुओं

या आदिवासियों की न्याई रहने लगे।" आगे लिखता है:—

"असल में पश्चिमी किनारे पर रहने वाले लोग—छोटी जातियों के हिन्दुओं में से धर्मपरिवर्तन कर इतना ज्यादह बढ़ रहे हैं कि कुछ सालों में यह सम्भव हो जायेगा पश्चिमी किनारे की सम्पूर्ण छोटी जातियां मुसलमान बन जायं।" (पृष्ठ २६६)

उपर्युक्त पंक्तियां सन् १६१३ में लिखी गयी थीं और इसके आठ साल बाद मोपला (मलाबार के गैर मुस्लिम छोटी जाति के हिन्दू) जबर्दस्ती सुन्नत कर हिन्दू स्त्री पुरुषों को तलवार की ताकत से मुसलमान बना रहे थे जिससे मालूम पड़ता था कि कितने थोड़े समय में कुरान की शिक्षा पाकर कानून का पालन करने वाले हिन्दू कट्टर शैतान बन जाते हैं।

किसी ने भी उस समय विचार नहीं किया था जिस समय कालीकट के जमोरीन ने अपने मछियारे प्रजाजनों को इस्लाम स्वीकार करने के लिये प्रेरित किया था कि किसी दिन ये ही मलाबार से हिन्दू धर्म को समाप्त करने का प्रयत्न करेंगे।

दक्षिणी भारत में इस्लाम के तथाकथित शांतिमय साधनों द्वारा फैलाव पर विचार करते हुए ऐतिहासिक को संदिग्ध परम्पराओं पर ही आश्रित रहना पड़ता है। परन्तु हिन्दुओं के इस्लाम में प्रवेश पर हमें कुछ साधनों से कुछ विश्वसनीय विवरण मिले हैं। आरनोल्ड द्वारा दिये गये उन आधे दर्जन मुसलमान प्रचारकों के नाम जो सन् १३०४ ई० १५६८ ई० तक दक्षिण भारत में कार्य करते रहे नाम देकर मैं इस कहानी को आगे चलाता हूँ। वह आगे लिखता है:—"मुल्तान के शहर को केन्द्र बनाकर एक दूसरी प्रचारकों की लहर कार्य कर रही थी

अरब विजयों के प्रारम्भिक दिनों में यह इस्लाम की बाहरी चौकी थी (७१४)........अरब शासन की तीन शताब्दियों में विजेताओं के धर्म में बहुतों ने प्रवेश किया होगा। सिन्ध के कई राजाओं ने खलीफा उमर बिन अब्दुल अजीज की प्रेरणा पर इस्लाम स्वीकार किया था (आश्चर्य है कि यह प्रेरणामय निमन्त्रण मात्र था या जबर्दस्ती शक्तिप्रयोग द्वारा किया गया कार्य) अल बालाधुरी के कथनानुसार उसके समय में (एक शताब्दी बाद) सावान्दरी की जनता ने इस्लाम को स्वीकार कर लिया था और विजेता के खरीतों में बार बार काफिरों द्वारा इस्लाम स्वीकार करने की बात कही गयी है।,, (पृष्ठ २७२)

निस्सन्देह आरनोल्ड इन सब धर्म परिवर्तनों के स्वेच्छापूर्वक बतलाता है परन्तु बलप्रयोग सदा मौत के सीधे भय के साथ ही नहीं किया जाता था।

प्रेरणा द्वारा धर्मपरिवर्तन की यहां बानगी देखिये, अल बालाधुरी काश्मीर मुलतान और काबुल के मध्यवर्ती "उसाईफन" देश के राजा के धर्मपरिवर्तन की नीचे लिखी कहानी सुनाता है:। इस देश की जनता एक मूर्ति की पूजा करती थी जिसके लिये उसने एक मन्दिर बनवाया था। राजा का लड़का बीमार पड़ गया उसने मन्दिर के पुजारियों से अपने लड़के के स्वास्थ्य लाभ के लिये मूर्ति की उपासना करने को कहा। पुजारी चले गये थोड़ी देर बाद उन्होंने लौट कर कहा हमने उपासना की है और हमारी विनती स्वीकार करली गयी है परन्तु थोड़े समय के बाद लड़का मर गया। इस पर राजा ने मन्दिर पर हमला किया मूर्ति को टुकड़े टुकड़े कर दिया और पुजारियों को कत्ल कर दिया। इसके बाद उसने मुसलमान व्यापारियों के एक दल को आमन्त्रित किया जिन्होंने उसे एक अल्लाह पर विश्वास करवाया जिस पर

उसे ईमान आगया और मुसलमान बन गया। मूर्ति तोड़ने तथा पुजारियों को कत्ल करने से पूर्व राजा का मुस्लिम व्यापारियों से क्या सम्बन्ध था यह यहां नहीं झलकता।

"मुस्लिम व्यापारियों की विभिन्न श्रेणियों द्वारा निस्सन्देह इसी तरह का प्रचारात्मक असर पैदा किया जा रहा था जो हिन्दुस्तान में काफिरों के शहर में अपना मजहब ले जाते थे।" (पृष्ठ २७३)

अब्दाल कादिर जिलानी १४२२ में सिन्ध आया और १० साल की मेहनत के बाद वह लोहाना जाति के ७०० परिवारों को मुसलमान बनाने में सफल होगया, जिन्होंने अपनी जाति के दो व्यक्तियों का उदाहरण सम्मुख रखते हुए इस्लाम स्वीकार कर लिया। एक फकीर द्वारा करामात दिखाये जाने पर इन दोनों ने आदमजी तथा ताज मुहम्मद नाम रख कर ये मुसलमान बन गये। पहले आदमी के नेतृत्व में इन आदमियों ने कच्छ को हिजरत कर दी जहां उनकी गिनती कच्छ के लोहानों का धर्मपरिवर्तन कर और बढ़ गयी।

सन् १४३० में खोजा जाति का खिया इस्लामी प्रचारक पीर सदर उल दीन ने भी सिन्ध में प्रचार का कार्य किया। इस फिरके द्वारा सुविधा जनक सिद्धान्तों का पालन करने के आधार पर इस ने अपना एक हिन्दू नाम रख लिया और हिन्दुओं के कुछ धार्मिक विश्वासों को इसने प्रचलित रहने दिया जिनमें वह धर्मपरिवर्तन करना चाहता था। उन में उसने दशावतार नामक पुस्तक का प्रारम्भ भी कर दिया उसने विष्णु दसवें अवतार को अली कहा। खोजा जाति प्रारम्भ से ही इसे एक धर्म पुस्तक के रूप में स्वीकार करती आयी है मरणोन्मुख व्यक्ति की शय्या के पास और बहुत से उत्सवों पर भी इस पुस्तक का पाठ किया

जाता है। यह पुस्तक नौ अवतारों को तो उसी रूप में सच मान लेती है परन्तु पूर्ण सत्य से कुछ कम होने से इस्माइलियों के सिद्धान्तों के आधार पर अपूर्ण वैष्णव संस्थान को अली के अवतार तथा आगामी प्रदर्शन से पूर्ण किया जाता है। इससे भी बढ़कर उसने ब्रह्म को मुहम्मद विष्णु को अली और आदम को शिव होने वाला स्वीकार कर लिया। उत्तरी सिन्ध के गांवों और शहरों में पीर सद्र-अल-दीन के पहले अनुयायी बने।"

इस्माइली प्रचारकों में भारत आने वालों में पीर सद्र अलदीन ही सबसे पहला नहीं था। १०६७ में यमन से भेजा गया प्रचारक अब्दुल्ला उससे भी पहले आया था...........दूसरा इस्माइली प्रचारक इस्माइलियों के गुरु के गढ़ अलामुत से भारत भेजा गया था इसका नाम नुरुलदीन था, परन्तु इसे सामान्यतया नूर सतगुर के हिन्दू नाम से जानते थे। हिन्दू राजा सिद्धराज के शासनकाल में यह सिन्ध पहुँचा। इसने एक हिन्दू नाम रख लिया परन्तु मुसल्मानों को बतलाया कि उसका असली नाम सैय्यद सआदत है। उसने कनबियों, खरवास, कोड़ी आदि गुजरात की नीची जातियों को मुसलमान बनाया। जिस प्रकार नूर सतगुर का खोजों का प्रथम धर्मप्रचारक कह कर आदर करते हैं उसी प्रकार मुख्यतया शियाओं के बड़े तथा महत्वपूर्ण फिरके हिन्दू प्रारम्भ वाले बोहरों का संस्थापक समझा जाता है जो कि बम्बई इहाते के मुख्य व्यापारिक केन्द्रों में बड़ी संख्या में पाये जाते हैं। परन्तु कुछ दूसरे प्रथम बोहरा धर्मप्रचारक होने का गौरव मुल्ला अली को देते हैं जिसके धर्मपरिवर्तन के तरीकों को शिया ऐतिहासिक ने इस प्रकार लिखा है :– 'क्योंकि उन दिनों में गुजरात के आधमी काफिर थे और वे एक बूढ़े मनुष्य को धार्मिक गुरु मान कर उसकी शिक्षाओं का अन्धानुकरण

करते थे—मुल्ला अली उसका चेला बन गया और मुल्क की पुस्तकों का गहरा अध्ययन कर बूढ़े मनुष्य को अपना मजहब बता दिया, जिस पर वह मुसलमान बन गया। कुछ हिन्दू चेलों ने भी अनुकरण किया। इसके बाद प्रधानमन्त्री गुप्तरूप से मुसलमान बना लिया गया। यह खबर राजा को भी मिली, वह इस पर विश्वास करने के लिये "एक दिन बिनापूर्व सूचना के अपने मन्त्री के घर गया वहां उसने देखा कि वह प्रार्थना में सिर झुका रहा है। मन्त्री ने राजा के आने का कारण समझ लिया और अनुभव किया कि उसकी प्रार्थना सिर झुकाने तथा दण्डवत पढ़ने से उत्पन्न सन्देह से उसके मन में उसके प्रति नाराजगी हो गई है 'परन्तु खुदा की अगुआई तथा अवसरयोग्य दैवी कृपा से' उसने कहा कि वह कमरे के कोने में एक सांप को देख रहा था। जब राजा कमरे के कोने की ओर बढ़ा, दैवी आयोजन से उसने वहां एक सांप देखा और मन्त्री के बहाने को मान लिया और उसका मन से सन्देह दूर हो गया। अन्त में राजा भी गुप्त रीति से मुसलमान बन गया परन्तु राज्य के कारण से उसने अपने इस मानसिक परिवर्तन को छिपाये ही रखा..........."
(पृष्ठ २७४ और २७६)

इस बनावटी कहानी को पढ़ने से कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं। दैवी कृपा से मन्त्री झूठा और पाखण्डी क्यों बन गया। राजा को कोने में सांप दिखा कर धोखा देने के स्थान पर अल्लाह ने राजा के मन पर इस्लाम के मजहब का प्रकाश क्यों न पहुँचा दिया? किस चीज ने राजा को मन्त्री द्वारा धोखा दिये जाने पर गुप्तरूप से मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया? सम्भवतः सतह पर सीधा काम करने के स्थान पर अन्दर अन्दर काम करने की इस्माइली प्रवृत्ति अधिक अभीष्ट थी। परन्तु मुख्य कारण उस

समय के हिन्दुओं के भोले तथा अन्धे कुसंस्कारों में पाया जा सकता है मुसलमान बादशाहों और सुल्तानों के समय में हिन्दुओं के मुसलमान बनाने में मुसलमान प्रचारकों द्वारा प्रयुक्त धोखेबाजी के उदाहरणों का ज्यादह देना निरर्थक होगा। मुसलमानों के प्रति पक्षपात से लिखने वाले ऐतिहासिकों के लम्बे उद्धरणों को देने का मेरा केवल यही प्रयोजन है कि ऊंची जाति के तथा कथित हिन्दुओं के भोलेपन, कुसंस्कार तथा असहिष्णु अत्याचार ने नीची जात के लाखों को मुसलमान बनाया, न कि इस्लाम के किसी गुण तथा अच्छाई की पहचान ने। अप्रत्यक्ष रूप से मेरे दृष्टिकोण को श्री आरनोल्ड न भी नीचे के उद्धरण में समर्थन किया है :—

"वास्तव में कई बार धर्मपरिवर्तन का कार्य बहुत अपूर्ण रहा। बहुत से नाममात्र के मुसलमानों को आधा हिन्दू कहा जा सकता है, वे बिरादरी के नियमों को पालन करते हैं, वे हिन्दुओं को के त्यौहारों में शामिल होते हैं और बहुत से मूर्तिपूजक रीतिरिवाजों का पालन करते हैं। कुछ जिलों में········ बहुत संख्या में ऐसे मुसलमान मिलते हैं जो कि नाम के अतिरिक्त मजहब को नहीं जानते, उनके यहां मस्जिदें नहीं हैं और वे नमाज भी नहीं करते। गांवों के मुसलमानों और देश के उन भागों में जहां कट्टर मुसलमान नहीं रहते—वहां विशेष रूप से यही देखने को मिलता है ········ " (पृष्ठ २८६)

ताकत के सिवाय दूसरे साधनों से ईसाइयत का प्रचार

ताकत द्वारा ईसाइयत के खून जमाने वाले विवरण में पहले ही दे चुका हूँ। मुझे विश्वास है कि वे आसानी से खिलजी,

औरङ्गजेब और टीपू सुल्तान के अत्यधिक धर्मान्ध कारनामों की तुलना भी आसानी से कर सकते हैं। अब मैं विश्वस्त अधिकारी व्यक्तियों के प्रमाणों से सिद्ध करूंगा कि मुसलमान साथियों की तुलना में जेस्युइट धर्म प्रचारक कपट के क्षेत्र में भी बाजी मार गये हैं। अपने विचार को सिद्ध करने के लिये मैं थियोडर ग्रिसिङ्गर के कुछ उद्धरण दूंगा।

भारत में पुर्तगालियों के आधीन जो कोई भी महत्व-पूर्ण स्थान हुआ वहीं ज़ेवियर ने ईसाई धर्म प्रचारकों का रास्ता साफ कर दिया। कालेज, निवासस्थानों और प्रचार केन्द्रों आदि के नाम पर जेस्युइट बस्तियों की स्थापना की गयीं। ये लगातार बढ़ती गयीं। लोयाला के लड़के के लिये इस काम में सफलता पाना बड़ा आसान था क्योंकि राजा के आदेश से पुर्तगाली गवर्नर इन धर्मप्रचारकों के हाथों में खेलते थे और दूसरे किसी विरोध को वे स्पेनिश धार्मिक न्यायलयों की स्वयं स्थापना कर आसानी से दबा सकते थे। प्रत्येक जगह प्रचार केन्द्रों की संख्या बढ़ाना भी मुश्किल काम न था, जहां कहीं भी पुर्तगाली या दूसरे यूरोपियन लुटेरे गये वहां जेस्युइट धर्मप्रचारक भी बढ़ते चले गये और बहुत सरल तरीकों से ईसाइयत की जातियों को बनाने के लिये अपने पैर मजबूती से जमा लिये। तो ये सरल तरीके क्या थे ? "इसके सिवाय दूसरा तरीका नहीं था कि ये धर्म प्रचारक भारतीय पुजारियों या ब्राह्मणों के भेस में जाते थे जिससे... ...कि वे देसी लोगों के समान गुजर सकें.... (पृष्ठ १०१)

उनमें से एक का नाम पीटर कान्स्टन्टोनियो बेसची था, जिसने हिन्दुओं की भाषा तथा संस्कृत का सावधानता पूर्वक अध्ययन किया था। यह हिन्दुओं के रीतिरिवाजों और तरीकों

तथा ब्राह्मणों के जीवनक्रम को इतने ठीक रूप से नकल करता था-कि दक्षिण के लोग-जिनमें वह अधिक समय से रहता था वास्तव में ही उसे एक सन्त के समान पूजने लगे। इस काफिरों के स्वर्ग में वह देसी भाषा में लोकप्रिय कवितायें भी तैयार करता था, जिन से यह सब मुल्कों में पूजा जाने लगा। ....दक्षिण को शासक ने इस भरोसे से कि वह सच्चा ब्राह्मण है, उसे दरबार का मुख्य दरबारी अफसर, मन्त्री, बना दिया और कान्स्टए-टाइन बेसची ने गलती को बचाने की तकलीफ बिल्कुल नहीं उठायी इसके विपरीत इस मान्य पीटर ने इस समय से सम्पूर्ण युरोपियन रीति रिवाजों और परम्पराओं को त्याग कर सुन्दर पूर्वी पोशाक पहननी शुरू कर दी, कीमती साज वाले घोड़े पर सवार हो वह सार्वजनिक रूप से निकलने लगा या गुलामों से उठायी जाने वाली पालकी में बैठने लगा। उसके साथ सदा कुछ घुड़सवार साथी होते थे जो कि इस बड़े आदमी का रास्ता साफ करते जाते थे, साथ ही उसके आने तथा जाने का तुरही से ढिंढरा पीटते जाते थे। किसी को यह ख्याल न था कि वह असल में एक यूरोपियन है अथवा बप्तिस्मा लिया हुआ कोई ईसाई है। वह अपने अन्तिम दिनों तक जेस्युइट ही बना रहा और उसके संघ के साथी भी उस पर कम नाज न करते थे। सुयोग्य पीटर बरथेलिमी अकोस्टा का दूसरा उदाहरण मैं यहां उपस्थित करना चाहता हूं। यह बिल्कुल विभिन्न चरित्र का व्यक्ति था। वह देश की समाज के उच्च श्रेणी के व्यक्तियों के पास बहुत कम जाता था, परन्तु वह जनता की सबसे निचली तलछट में घुले रहना अधिक पसन्द करता था। सम्भवतः प्रधानमन्त्री और वजीरेआजम कानटैन्टिनो वेसची की न्याईं निस्सन्देह उसका भी वही उद्देश्य और आशय था। वह समाज की बदनाम वेश्याओं और नर्तकियों के कोठों पर गया और

वह बयादेरों की झोंपड़ियों में गया, उसे अच्छी तरह पता था कि वे हर समय हर दिन प्रेम के देवता को रिझाने में लगे रहने से पुरुषजाति को प्रभावित कर सकते हैं, इसलिये उसने उनके साथ बहुत अच्छे सम्बन्ध बना लिये। वह उनके साथ जाकर खेलता था, नाचता था और शराब पीता था, इन सब तरीक़ों से वह उनका सब से प्रिय मित्र और विश्वासपात्र बन गया। वे दीन प्राणी उससे खूब खुश थे, उन्होंने उसके हाथों ही स्वर्ग के रास्ते पर चलना निश्चय किया, जिसने कि सारा मामला बहुत आसान कर दिया था। ईसाइयत का मजहब स्वीकार करने में उन्हें एक ही बाधा दिखाई देती थी, वह यह थी कि उन्हें बताया गया था कि ईसाई पादरी उस व्यवसाय को पापमय जुर्म कहते थे जिस पर वे जिन्दगी बिताते थे। परिणामस्वरूप उनके बप्तिस्मे के धर्मानुष्ठान को करने का समय क्षण प्रतिक्षण टलता ही जाता था। इस पर उस योग्य धर्म पिता ने क्या किया ?

"उसने उन्हें शिक्षा दी कि वे किसी प्रकार का पाप किये बिना ही ईसाई बन सकते हैं और परमात्मा के प्यार पर अपने को न्यौछावर कर सकते हैं, यदि वे अपनी आमदनी के कुछ हिस्से को ईसाई चर्च को सौंप दें तथा सब अवसरों पर जो उनकी मोहिनी शक्ति से उनके बस में हैं, उन्हें ईसाई बनाने की कोशिश करें। इन तथा इसी तरह की दूसरी रीतियों से जेस्युइट लोग सम्पूर्ण भारत में धीमे धीमे घुस गये और जब तक पुर्तगाली हकूमत बची रही, वे देश के असली शासक बने रहे अथवा यह कहना ठीक होगा कि उन्होंने इस अनन्त प्रदेश को स्वेच्छापूर्वक लूटने में खुली छूट पायी...........वे ईसाई बनाते थे, कालेज और छात्रावासों की स्थापना करते थे क्योंकि उन्हें पुर्तगाल के राजा बहुत ही अधिक प्यार करते थे (पृष्ठ १०२ और १०३)

१८८६ ई० के जुलाई मास के थियोसोफिस्ट में भारत में जेस्युइट लोगों के कारनामों और ईसाई बनाने के उत्साह का वर्णन कर एक लेखक उनके कार्यों को परिणाम का सारांश इस तरह रखता है :—

१५५८ में जेवियर की मृत्यु के समय भारत के दोनों किनारों पर विभिन्न प्रचार केन्द्रों में २०० जेस्युइट कार्य कर रहे थे। कुछ ही सालों में हिन्दू मन्दिरों के ध्वंसावशेषों पर उन्होंने शाही गिरजाघर खड़े कर दिये थे। कुछ हिन्दू मन्दिर बिल्कुल मिट्टी में मिला दिये गये थे। इसके अतिरिक्त उन्होंने नये ईसाइयों के लिये धार्मिक स्कूलों की स्थापना की। परन्तु वे इंजील के बुरे शिक्षक थे। डाक्टर थामस मैकरी कहते हैं कि पवित्र ईसा का नाम बहुत बुरे कार्यों में आया जब वह उस समाज पर थोपा गया जो "विनीत और निम्न" था, यह ईसा की वास्तविक भावना और चरित्र से विरुद्ध था जेस्युइट लोगों ने अपने फायदे के लिये एक बिल्कुल नया आचारशास्त्र गढ़ लिया था। दैवी कानून के स्थान पर उन्होंने अपने चरित्र का अनुकरण करना अपने बड़ों का आंख मूंद कर आज्ञापालन, जिसे वे परमात्मा के स्थान पर स्वीकार करने को बाध्य हैं और उनकी आज्ञाओं का पालन करते हुए अपनी इच्छाओं को मृतलाश या बूढ़े आदमी की टेक के समान छोड़ देना होगा।...................
नवयुवकों के शिक्षक के नाते वे सावधानी बरतते थे कि मानव ज्ञान का क्षेत्र कम से कम विस्तृत किया जाय क्योंकि वह उनके धर्मप्रचार के प्रभुत्व के लिये खतरनाक सिद्ध हो सकता था। इसलिए उन्होंने अपने शिष्यों को साहित्यिक अध्ययन तक ही सीमित रखा जो कि अन्धकारयुग के पक्षपात को कम किये बिना उन्हें प्रसन्न रख सकता। था धर्म प्रचारकों के नाते वे

सब देशों को बप्तिस्मा देने की मेहनत में अधिक परिश्रमी और सफल रहे बनिस्बत इसके कि वे इंजील की शिक्षा देते।"

हिन्दुओं और मुसलमानों को ईसाइयत में बहका लाने के लिये उन्होंने सब उपायों का आसरा लिया और तामिल तथा दूसरी भाषाओं में पर्चे व पुस्तकें प्रकाशित कीं। यह उस समय की हालत थी जब बादशाह अकबर ईसाइयत के बारे में अपनी जिज्ञासा पूरी कर रहा था और उसने १५८२ में अपने दरबार में जेस्युइट लोगों को बुलाकर उनसे ईसा की जीवनी के बारे में पूछा था। कपटी पादरियों ने यह सोच कर कि उसकी पूर्वी कल्पना को लुभाने के लिए सरल जीवन आकर्षक न होगा, उन्होंने बादशाह को हिन्दुओं के पुराणों के समान दन्त कथाओं, से भरी ईसा की झूठी जीवनी सुनाई। पर यह चालाकी मात दे गयी अकबर ने कपट को पकड़ लिया और उन्हें दरबार से विदा कर दिया। इस तरह से वे देशी लोगों से इंजील की विशेषताओं को छिपा कर रखते थे वे जनता के भद्दे से भद्दे सिद्धान्तों से मेल करने का प्रयत्न करते थे। यही काफी न था। वे रोम से कल्पित सन्तों के सिर और कपाल लेते थे साथ ही चालाकी से वे इन स्मारक चिन्हों के करतबों तथा कारनामों को सर्वत्र फैला देते थे इसके बाद तारों से मूर्तियों को हिलाते थे, जिसे वे कहते थे इन्हें स्वर्ग से आश्चर्य-जनकरूप से हिलाया जा रहा है। कोरोमण्डल किनारे पर मलियापुर में एक कब्र को छलपूर्वक सैन्ट थोमस की समाधि बताया जाने लगा। साथ ही हवाला दिया जाने लगा कि ईश्वर-दूत सिन्धु को पार कर कर्णाटक तक दक्षिण में पहुँच गया था और वहां शुभ समाचार सुना कर शहीद हो गया था। इस तरह के सन्तों की हड्डियों से वे शैतानों से हास्यजनक लड़ाइयां लड़ते थे और अशिक्षित जनता की आंखों में धूल झोंकते थे।

भारत की जनता को ठगने के लिए इन चतुर पादरियों ने कितने अनगिनत चालबाजियां कीं, इनकी गणना के लिये एक बड़े ग्रन्थ की जरूरत होगी।"

प्रकरण ४

दूसरा कारण

आर्य वर्ण-व्यवस्था का भङ्ग

कुरान तथा हजरत मुहम्मद की जीवन कहानियों के संग्रह हदीस पर आश्रित मुसलमानों की सामाजिक व्यवस्था केवल १४ शताब्दी पुरानी है। सुधार किये हुए यहूदी धर्म तथा बुतपरस्ती के मेल से बनी ईसाई सामाजिक व्यवस्था भी २० शतक से पुरानी नहीं है। ३५ शताब्दी पूर्व हजरत मूसा के पथप्रदर्शन में यहूदी लोग जिस समय अपने समाज का निर्माण कर रहे थे उस समय आर्य सामाजिक संगठन लाखों साल से अछूता बचा हुआ था और अपने ऊंचे स्थान से गिरा ही चाहता था।

वेदों की शिक्षाओं के आधार पर आर्यवर्ण-व्यवस्था स्थिर थी और आर्य लोग विश्वास रखते थे कि वेदों का ईश्वरीयज्ञान संसार के प्रारम्भ से विद्यमान था। अंग्रेजों के प्रथम वैदिक विद्वान् सर विलियम जोन्स लिखते हैं :—....— "हम वेदों को सबसे अधिक प्राचीन होने के गौरव को देने से इन्कार नहीं कर सकते।, महान् फ्रेंच न्यायशास्त्री लुई जैकोलियो अपने मौलिक ग्रन्थ 'भारत में बाईबिल" में लिखते हैं:— "प्राचीनता की दृष्टि से सबसे पुराने विवरणग्रन्थों से भी निर्विवाद रूप से वेद पुरातन हैं। ये पवित्र ग्रन्थ जिन्हें ब्राह्मण परमात्मा द्वारा प्रतिपादित ज्ञान का संग्रह कहते हैं फारस एशिया-माइनर मिश्र और यूरोप में जिस समय उपनिवेश भी न बसे थे, कोई बस्तियां न थी उस समय वे भारत में पूजे जाते थे।" आगे फिर वह लिखते हैं:—" भारत संसार का पालना है, वहां से यह सार्वजनिक मातृभूमि अपने बच्चों को आगे भेज रही है और सुदूर पश्चिम भी अपने प्रारम्भ की स्पष्ट साक्षी उसकी वसीयत में पाता है, उसकी भाषा उसके कानून, उसका नीतिशास्त्र, उसका साहित्य, उसका धार्मिक विरोधी फारस, अरब, मिश्र सब प्रारम्भ में उसी की थाती को लिये बैठे है, अपनी सूर्यतप्ता जन्मभूमि को छोड़कर बहुत दूर ठण्डे मेघाच्छन्न प्रदेश में जाकर वे व्यर्थ ही अपने रवानगी के स्थान को भुला बैठें, उनकी त्वचा भूरी रहे या पश्चिम की बरफ के संयोग से वह सफेद बन जाय, उनके द्वारा संस्थापित सस्कृति की शानदार सल्तनतें गिर कर चकनाचूर हो जांय और उनका कोई निशान सिवाय कुछ वास्तुकला के ध्वसावशेषों के न बचा रह जाय, "पहलों की 'धूल पर नये मानव खड़े हो जांय, पुरानों के खण्डहरों पर नये शहर चाहे आबाद हो जांय परन्तु समय और बर्बादी मिलकर भी अपने प्रारम्भ के सदा स्पष्ट चिन्ह को नहीं मिटा सकते।.........'व्यवस्थापक

मीनु' जिनक प्रामाणिकता सन्देह से ऊपर है ईसाई सम्वन् से ३००० वर्ष पुराने समय के हैं, ब्राह्मण तो उन्हें और भी प्राचीन काल का बताते हैं। पूर्वी तिथिक्रम की पुष्टि के लिये हमारा ज्ञान तथा भौतिक साक्षियां (बाईबल की परम्पराओं पर आश्रित) हमारे तिथिक्रम से कम हास्यास्पद है और इस संसार के निर्माण के लिये विज्ञान की तान से अधिक मेल खाता है........हम अभी देखेंगे मिश्र, जूडिया, यूनान, रोम सब अपने अपने पुरातन को ब्राह्मण समाज के वर्णों, सिद्धान्तों, धार्मिक विचारों का उलथा किये हुए हैं, और इसके ब्राह्मणों, पुजारियों तथा इसकी चित्राहीनता को अपना लिये हैं साथ ही भाषा व्यवस्थापन तथा प्राचीन वैदिक समाज के दर्शन को अङ्गीकार कर गये हैं, जिस समाज से उनके पूर्वज प्रारम्भिक ज्ञान के महान् विचारों को संसार को देने के लिये विदा हुए थे।"

वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान मानवजाति को उस पवित्र स्थल पर हुआ होगा जो सर्वप्रथम पानी से निकला होगा क्योंकि इस भौतिक जगत के स्थिरता में आने के बाद क्या हमारे इस ब्रह्माण्ड पर जीवनयात्रा सम्भव थी? तिब्बत का पठार सबसे पहले पानी से बाहर निकला इसलिये वेदों का प्रारम्भिक ज्ञान शुरू के मानवसमाज को उस पवित्र स्थल पर हुआ होगा। अच्छे और पुण्यात्मा तथा बुरे और पापियों में मनुष्य बंट गये। वेद में पहलों को आर्य और पिछलों को दस्यु कहा गया है। यही केवल भेद था नसल का उस समय कोई भेद था क्योंकि न सारा मानवसमाज एक नसल का था।

वैदिक वर्ण-व्यवस्था

प्राकृतिक नियमों के आधार पर वेदों में सामाजिक संगठन

का ढांचा खड़ा किया हुआ है। सामाजिक संगठन का आधार व्यक्तिगत अङ्गसंस्थान रखा गया है और व्यक्तिगत अंगसंस्थान के विभिन्न प्राकृतिक कार्यों के आधार पर समाज को चार हिस्सों में विभक्त किया गया था। सिर, दो हाथ, जांघ और दो पैर चार वर्णों में विभक्त मानव समाज के चिन्ह थे। यदि समाज को एक शरीर माना जाय तो इसका शरीर संस्थान इस प्रकार कार्य करेगा। यजुर्वेद के २१ वें अध्याय के ११ वें मन्त्र में प्रश्न किया गया है —

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्यासीत किं बाहू किमुरुपादा उच्येते ॥

प्रश्न पूछा जाता है कि यह विराट व्यक्तिरूप को प्राप्त हुए मानवता की शक्ति व गुणों का वे कितनी प्रकार से वर्णन करते हैं। मुंह कौन सा है, हाथ कौन से हैं, जंघा कौन सी है और इस विराट-पुरुष के पैर कौन से हैं?

१२ वें मन्त्र में उत्तर दिया गया है—

ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहू राजन्य कृतः।
उरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ॥

ऋषि दयानन्द ने उपर्युक्त मन्त्र का आशय इस प्रकार से व्यक्त किया है—

पुरुष के मुख से ब्राह्मण की उत्पत्ति हुई कही जाती है- अर्थात् ज्ञान आदि सर्वप्रथम तथा सर्वोत्कृष्ट गुणों तथा सच्ची वाणी और शिक्षक व प्रचारक के कार्यों से वह युक्त होता है। उसने क्षत्रियों को बनाया और उन्हें शक्ति व शौर्य के गुण दिये गये। कृषि, व्यापार व वाणिज्य के गुण लगभग मध्यवर्ती श्रेणी

-वाली जनता के हैं। ब्रह्मा के अनुशासन से इन गुणों से युक्त वैश्य या व्यापारी की उत्पत्ति हुई। दूसरों की सेवा व उन पर निर्भर होने के विभेदक गुणों वाला शूद्र विचारशक्ति की शून्यता से सबसे निम्न स्तर के गुणों से उत्पन्न हुआ।

वर्णव्यवस्था शब्द से मानवीय समाज के चारों विभाजक घटक हिस्सों का बोध होता है। 'व्यवस्था' शब्द प्रबन्ध, संगठन को व्यक्त करता है, और वैदिक शैली की व्याख्या के अनुसार निरुक्त के अध्याय २, भाग ३ में 'वर्ण' शब्द की व्याख्या इस प्रकार की गयी है :—

वृ धातु वृञ्‌ वरणे चुनना, नियत करना मूल से वर्ण, शब्द निर्माण हुआ है। इस लिये इसका मतलब है 'वह जो चुना जाना हो' 'चुनाव के योग्य' या वह व्यक्ति जो अपने गुण व कर्मों का पूरा विचार कर नियत किया जाता है अथवा चुना जाता है।

भगवतद्‌गीता में भगवान् कृष्ण कहते हैं :–

चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुणकर्मविभागशः।

इन गुणों, कार्यों, श्रेष्ठता, कार्य, चरित्र व आचार से पुराने आर्य लोगों का वर्ण निश्चित हुआ करता था। समाज में मनुष्य की स्थिति का निर्धारण करने के लिये जन्म ही अकेला साधक नहीं था। सामाजिक संस्थान या शारीरिक संस्थान को व्यक्तिगत मानवीय अङ्गसंस्थान की तुलना करने वाली यजुर्वेद की आलङ्कारिक ऋचाओं का क्या अभिप्राय है? संस्थात्मक व्यवस्था में ब्राह्मण को वही स्थिति है जो मानवीय संगठन में सिर, की अवस्था है? मानवीय व्यवस्था में सिर की क्या स्थिति है? इन्द्रियों के देखने, सुनने, सूंघने, चखने और छूने के पांचों हिस्से

शरीर के प्रमुख भाग सिर में अवस्थित हैं। इन्द्रियों के इन सब हिस्सों से सच्चा ज्ञान मन के माध्यम से बुद्धि तक पहुँचता है जो सम्पूर्ण शरीर को नियन्त्रित करती है शरीर के भाग में केवल क्रिया का भाग वाणी ही विद्यमान है। शरीरको स्थिर रखने वाला सम्पूर्ण भोजन मुख में से ही गुजरता है और यह पचाने लायक होने से पूर्व दान्तों द्वारा चबाया जाता है। विचित्रता यह है कि मुंह उस सब भोजन को भेजता है जो सारे शरीर में विभक्त होने के लिये पचाया जाता है और वह अपने लिये कुछ नहीं रख छोड़ता। इस उपमा को दृष्टि में रख कर कहा जा सकता है कि ब्राह्मण वह होता है जो रात दिन ज्ञान की प्राप्ति में लगा रहता है और इस प्राप्त हुए ज्ञान को वाणी के द्वारा सारे सामाजिक संगठन को देता है और बिना किसी तरह का पारिश्रमिक लिये उन्नत विचार समाज को देता है और वास्तव में सम्पूर्ण मानवीय सामाजिक व्यवस्था का संचालन करता है इसी तरह एक क्षत्रिय की व्याख्या की जा सकती है जो सामाजिक संगठन को बाह्य आक्रमणों तथा आन्तरिक अपराधियों के हमले से बचाता है और राज्य कार्यों की व्यवस्था करता है वैश्य उसे कहा जा सकता है जो समाज की आर्थिक स्थिति के विकास में लगा हुआ है और समाज की भौतिक आवश्यकताओं का प्रबन्ध करता है। और एक शूद्र उसे कहा जा सकता है जिसका कर्तव्य है कि अन्य तीनों वर्णों की सेवा करे।

वेदों द्वारा प्रतिपादित यह स्वाभाविक सिद्धान्त है जिसके आधार पर मनु (प्रथम न्यायशास्त्री) ने तथा गीता में भगवान कृष्ण ने गुण, कर्म, योग्यता व कर्तव्य कर्म के अनुसार चारों वर्णों के कामों का प्रतिपादन किया है।

ब्राह्मण कौन है ?

पढ़ना, पढ़ाना, यज्ञ करना तथा यज्ञ करने में सहायता देना, तथा संसार के कल्याण के लिये नियमों का निर्माण कर इनकी देखभाल करना दान देना तथा भेंट लेना—ये छः काम ब्राह्मणों के हैं ?" मनु १, २८

स्थिरता, आत्म संयम, तपस्या, पवित्रता, क्षमा, जागरूकता, बुद्धिमत्ता, ज्ञान, परमात्मा में विश्वास, ये विशेषतायें तथा गुण पुरुष या स्त्री मानव के ब्राह्मण कहलाने से पूर्व होने आवश्यक हैं। गीता १८, ४२

क्षत्रिय कौन है ?

भय या पक्षपात के बिना पूर्ण न्याययुक्त शासन व्यवस्था द्वारा जनता की रक्षा करना, सत्य व न्याय के कार्य संचालन के लिये व्यय करना, ज्ञान बढ़ाना, यज्ञ करना, वेदों का अध्ययन करना तथा इन्द्रियों के पूरे नियन्त्रण के द्वारा विषय सम्बन्धी उपभोग के आकर्षण से बचे रहना आदि ६ कार्यों को करना क्षत्रिय का कर्तव्य है। मनु १, ८६

साहस, वैभव, दृढ़ता, चतुरता, लड़ाई छोड़ कर न भागना, उदारता, शासक की प्रकृति क्षत्रिय की विशेषतायें हैं।

गीता १८, ४३

वैश्य कौन है ?

पशुओं के समूह की पालना उनकी नसल अच्छी करना और उन्हें बढ़ाना ब्राह्मणों व क्षत्रियों को अपने विभिन्न कार्यों के संचालन के लिये धन व्यय करना, शूद्रों की पालना करना यज्ञ करना, वेदों व दूसरे शास्त्रों का अध्ययन करना व्याज पर रुपया ऋण में देना और भूमि पर कृषि करना वैश्य की विशेषतायें और कर्तव्य हैं।" मनु १, ९०

शूद्र कौन है ?

शूद्र उस व्यक्ति को कहा जा सकता है, जो ज्ञान प्राप्त करने में असमर्थ है इसलिए वह शूद्र कोटि के उपयुक्त है। वह किसी प्रकार की असम्मान डाह तथा धोखे की भावना के बिना ही, अन्य सब वर्णों की ईमानदारी से सेवा करता हुआ अपनी आजीविका को कमाये, शूद्र की यही अकेली विशेषता और कर्तव्य है। (मनु. १. ६१)

सारांश यह है कि जो युवकों का शिक्षक है, धर्म का प्रचारक है तथा व्यवस्थापक है, वस्तुतः ही जो समाज को उचित मार्ग पर ले जा सकता है और स्वयं सादगी व पवित्रता का जीवन व्यतीत करने वाला है, वही व्यक्ति ब्राह्मण है। जो स्वभावतः क्षत्रिय होते हैं उनके हाथों में राज्य-कार्य की बागडोर सौंपने से देश कुशासन व कुप्रबन्ध से कभी कष्ट नहीं पाता। यदि राज्य के वैश्य विश्वस्त और ईमानदार व्यक्ति हैं तो समाज की आर्थिक स्थिति कभी नहीं बिगड़ सकती और जो ज्ञानशून्य हैं, वे शेष तीन वर्णों की ईमानदारी से सेवा करें। जब तक समाज का यह प्राकृतिक विभाजन भारत में बना रहा, उस समय तक आर्यों ने संसार के दूर से दूर छोर तक अपने उपनिवेश बसाये और सम्पूर्ण संसार को अपनी संस्कृति, सभ्यता और न्याय-व्यवस्था की शिक्षा दी।

लाखों वर्षों तक स्थिति इसी प्रकार चलती रही। ५ हजार वर्ष पूर्व अधर्म ने धर्म का स्थान ले लिया। आर्यों का प्राचीन संगठन, कौरवों और पाण्डवों की पारस्परिक ईर्ष्या तथा घमण्ड की चट्टान से टकराकर चकनाचूर हो गया। अर्जुन को सम्बोधित करते हुए अपनी दिव्यदृष्टि से योगीराज कृष्ण ने कहा था—हे मानव ! इन्द्रियों के विषयों में फंस जाने से इनमें आसक्ति

उत्पन्न हो जाती है, इच्छा अथवा काम से क्रोध उत्पन्न होता है, क्रोध से बुद्धि विचलित हो जाती है, बुद्धि के स्थिर न रहने से ज्ञान का नाश हो जाता है, ज्ञान-नाश से मनुष्य नष्ट हो जाता है।"

व्यक्तियों के अनुसार ही राष्ट्रों का उत्थान-पतन होता है, वैयुक्तिक आसक्ति को सन्तुष्ट करने की इच्छा से ही विनाश होता है। कुरुक्षेत्र के मैदान में भारतीय क्षात्र–तेज की विशिष्टता जड़ से ही विनष्ट हो गयी और ब्राह्मणवर्ग अनियन्त्रित हो गया तथा उसने दूसरे वर्णों को अपने दास रूप में परिवर्तित कर दिया। मनुष्य के वर्ण निर्धारण करने के लिये जिस चरित्र व आचार की आवश्यकता होती है, उस की उपेक्षा कर के जन्म को निर्णायक वस्तु समझा जाने लगा। धीमे-धीमे इस जातिगत दृढ़ता ने व्यवस्था का रूप धारण कर लिया और विद्वान् ब्राह्मणों का अभाव हो गया। धीरे-धीरे ब्रह्मचर्य व्यवस्था की भी समाप्ति हो गयी, क्योंकि ब्राह्मणों को यह डर ही नहीं रह गया था, कि यदि उनकी सन्तान का उचित शिक्षण न हुआ तो वह शूद्रों की श्रेणी में पतित हो जायेगी, और यह वर्ण-व्यवस्था बद्धमूल हो गई तो निम्नवर्ग के लिये उच्चवर्ग में जाने का कोई प्रलोभन भी नहीं रहा। विशुद्ध वैदिक विश्वास; अन्धविश्वासों में परिवर्त्तित हो गये, वैदिक भावनाओं के एकमात्र सार (तत्व) 'अद्वितीय ब्रह्म' का स्थान, असभ्य जातियों के १००१ देवताओं ने ले लिया और आध्यात्मिक ज्ञान का-एकमात्र अधिकारी-ब्राह्मणों ने अपने को घोषित कर दिया। उत्तर भारत में यद्यपि वर्ण-व्यवस्था कठोर रूप में और जन्मगत थी, तो भी वर्णों के चारों विभागों को स्वीकृत किया जाता था। परन्तु दक्षिण भारत में तो क्षत्रियों और वैश्यों की सत्ता को ही समाप्त कर दिया गया तथा सम्पूर्ण जाति को, ब्राह्मण और अब्राह्मण दो भागों में विभाजित कर दिया गया।

इस के बाद ये उपजातियां कुकुरमुत्ते की भांति बढ़ने लगीं। मूर्तिपूजा और मनुष्यपूजा ने तो पहले ही ६६६ धार्मिक श्रेणियों को जन्म दे दिया था, परन्तु प्रतीत होता है कि हिन्दू-समाज को विघटित करने के लिये यह पर्याप्त नहीं था और प्रमुखजातियां ६६, ६६६ उपजातियों में विभाजित हो गईं। जब एक बार यह विघटन प्रारम्भ होता है तो उसे रोक सकना लगभग असम्भव होता है। प्रत्येक श्रेणी और प्रत्येक उपजाति दूसरों को तिरस्कार से देखने लगी और जो लोग राजनैतिक दृष्टि से पिछड़े हुए थे, उन्हें अपने आप को 'उच्चजाति का' कहने वालों ने घृणा की दृष्टि से देखना प्रारम्भ कर दिया। इस प्रकार उत्तर भारत में अस्पृश्यता को जन्म मिला और दक्षिण भारत में तो उन्हें अदर्शनीय समझा जाने लगा तथा उन्हें दूर-दूर रखा जाने लगा।

तथाकथित-पञ्चम

महाभारत-काल तक न तो वेदों में, और न ही शास्त्रों में पञ्चम-वर्ण का कोई वर्णन उपलब्ध है, प्रतीत होता है कि बाद में अस्पृश्यों और दलितों को 'पञ्चम' नाम से पुकारा जाने लगा। महाभारत में कहा है :

स्मृताश्च वर्णाः चत्वारो पञ्चमो नाभिगम्यते ।

विश्व के इतिहास में प्रथम बार इस प्रकार का अतुलनीय सामाजिक और आर्थिक अत्याचार प्रारम्भ हुआ। सम्पूर्ण हिन्दू-समाज का एक तिहाई भाग आजकल 'पञ्चम' वर्ग में रखा जाता है : इस तिहाई भाग में वे लोग सम्मिलित नहीं हैं जो कि उत्तर भारत में शूद्र कहलाते हैं। दक्षिण भारत में, ब्राह्मणेतरों को 'अ-ब्राह्मण' कहा जाता है और यह समझा जाता है, कि इन्हें हिन्दुओं के धार्मिक संस्कारों का अधिकार प्राप्त नहीं है। आज के युग का अशिक्षित

ब्राह्मण शिवाजी महाराज के परम्परागत उत्तराधिकारी कोल्हापुर के महाराज को भी, वैदिक संस्कारों के योग्य नहीं समझता। २४ करोड़ हिन्दुओं में से (जैसा कि मैं आगे दिखाऊंगा) केवल १, ४२, ५४, ६६१ व्यक्ति ब्राह्मण हैं, लगभग ३॥ करोड़ उच्च वर्ण के समझे जा सकते हैं, शेष सब को ब्राह्मणों ने शूद्रों में गिन दिया है। और मनु का कहना है कि जिस देश में शूद्र बहुतायत से छा जाते हैं उस देश का अवश्य ही अधःपतन होता है।

यह 'पञ्चम' कहलाने वाले लोग ही गत ५० वर्षों से ईसाई मिशनरियों के शिकार हो रहे हैं यही वह वर्ग है जिसमें से ईसाई समाज के लिये रगरूट भरती होते हैं। भारत में वर्त्तमान समय में विद्यमान, ५० लाख ईसाइयों में लगभग ४७ लाख, पञ्चम वर्ग में से गये हुए हैं।

अस्पृश्य गिने जानेवालों की संख्या

सन १६२१ की जनगणना के अनुसार बर्मा को छोड़ कर ब्रिटिश भारत, बड़ौदा, ग्वालियर, मैसूर और ट्रावन्कोर जैसी प्रमुख रियासतों में अस्पृश्यों अथवा दलितों की संख्या ५,२६,८०,०००थी। 'सेन्सस आफ इण्डिया' के भाग १ पृष्ठ २२५ और २२६ पर इन संख्याओं की यथार्थता के सम्बन्ध में एक नोट देते हुए लिखा है:— "इस प्रकरण में हिन्दुओं में 'दलित' कहे जानेवाले वर्ग को 'न्यूनतम' संख्याओं में और मोटे-मोटे रूप में ही अङ्कित किया गया है। प्रान्तीय सख्याओं के जोड़ने से यह संख्या लगभग ५करोड़ ३० लाख तक जा पहुँचती है। तो भी यह ध्यान रखना चाहिये कि ये संख्याएं न्यूनतम और अनुदार अंकन का परिणाम हैं क्योंकि इन संख्याओं में निम्न बातें समाविष्ट नहीं है।

(१) दलित-वर्ग से सम्बद्ध जातियों, उपजातियों की ठीक-ठीक

परिगणना और इनका शक्ति-सन्तुलन।

(२) वे आदिवासी जातियां जो कि अभी-अभी हिन्दुओं में समाविष्ट हो गई हैं और शूद्र नहीं गिनी जाती। हम पूर्ण विश्वास के साथ अशुद्ध माने जाने वाले दलित वर्ग की संख्या ५॥ करोड़ और ६ करोड़ के बीच कूत सकते हैं।"

इनमें पहाड़ों और जंगलों में रहने वाली उन जातियों को भी गिना जा सकता है जो अपने आपको 'हिन्दू' कहती हैं परन्तु उन्हें 'अज्ञेयधर्मी' गिना जाता है। इनकी संख्या के सम्बन्ध में "सैन्सस रिपोर्ट आफ इण्डिया' का कहना है:—'आदिवासियों की ठीक-ठीक संख्या बता सकना सम्भव नहीं है, परन्तु पहाड़ों और जगलों में रहने वाली तथा उन्हीं स्थानों की निवासिनी समझी जाने वाली जातियों की तथा गोंड, संथाल और ओरायन आदि जातियों की संख्या, मोटे तौर पर १ करोड़ ६० लाख से कुछ अधिक है।" दलितों की जो संख्याएं घोषित की गई हैं उनके मध्यमान= $\frac{५५०+६००}{२}$ =५७५ लाख में यदि पहाड़ों और जंगलों में रहने वाली जातियों की १६० लाख संख्या जोड़ दी जाय, तो हिन्दुओं में निम्नवर्ग अथवा दलित और अस्पृश्य कहे जाने वालों की संख्या ७३५ लाख हो जाती है। इस प्रकार २३,६७,५४ ५८४ हिन्दुओं में मोटे रूप में ७॥ करोड़ उपर्युक्त लोग हैं, अर्थात् हिन्दू जनसंख्या का एक तिहाई भाग उससे इस कारण पृथक् हो जाता है, क्योंकि ४० लाख का पुरोहिताई करनेवाला एक वर्ग एवं अपने को सनातनधर्मानुयायी कहने वाले ब्राह्मण उनसे अमानुषिक व्यवहार करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं। यहां मेरा अभिप्राय १४२ लाख ब्राह्मणों में से केवल ४० लाख से है, क्योंकि शेष तो अन्य नास्तिक कहे जाने वाले हिन्दुओं (यहां लेखक का अभिप्राय सुधारक हिन्दुओं से है—अनु०) की भांति

अस्पृश्यता को पूर्णरूप से समाप्त कर देने के लिये व्यग्र हैं। मैं जानना चाहता हूँ—क्या जागृत और शिक्षित १ करोड़ ब्राह्मणों की नैतिक सहायता से संगठित १५ करोड़ अब्राह्मण, अपने ७॥ करोड़ सहधर्मियों का गोमांसाहारी धर्मवालों द्वारा अपहरण होने देंगे ?

अस्पृश्यता प्रगति में बाधक है

हिन्दुओं में प्रचलित अस्पृश्यता का अभिशाप उनके सम्मान पर एक बट्टा है और उनके इस पाप का दुष्परिणाम सम्पूर्ण भारतीय-राष्ट्र भुगत रहा है। जब कभी हमारे राजनीतिक नेता स्वराज्य की माग पेश करते हैं तो उनके सामने उनके पापों को रखकर उनका मुंह बन्द कर दिया जाता है। जो लोग अपने ही समाज के एक तिहाई लोगों को गुलाम बनाये हुए हों और उन्हें पैरों तले कुचल रहे हों, उन्हें विदेशियों द्वारा किये गये अत्याचारों के विरुद्ध शिकायत करने का कोई अधिकार नहीं है।

अछूत कौन हैं ?

प्रश्न उत्पन्न होता है कि ये अस्पृश्य अथवा अछूत कौन हैं ? क्या वे दक्षिणी अफ्रीका के जुलु लोगों के देश से आये थे अथवा नरक की जलती हुई अग्नि में से बाहर धकेल दिये गये थे ? कम से कम वे स्वर्ग से नहीं ही गिराये गये, यह तो उनकी अवस्था से भली भाँति प्रगट है। यदि थोड़े धैर्य से और पक्षपातशून्य होकर खोज की जाये तो यह अच्छी प्रकार सिद्ध किया जा सकता है कि अछूतों के—और तो और भंगियों और धेड़ों के भी—गोत्र वही हैं जो कि तीन उच्चवर्णी कहे जाने वाले सवर्ण हिन्दुओं के हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इनका भी मूल उद्गम-

स्थान वही है जहां से ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य प्रगट हुए हैं। बहुत सम्भवतः उनके नैतिक-पतन के कारण उन्हें सामाजिक दृष्टि से भी निम्न वर्ग में धकेल दिया गया, यदि वे अपने रहन सहन को सुधार लेते हैं और नैतिक दृष्टि से ऊपर उठने लगते हैं तो उन्हें अपनी पुरानी स्थिति प्राप्त करने से कोई नहीं रोक सकता। यह एक सीधा-सादा सत्य है जिसकी हिन्दुओं ने शताब्दियों से उपेक्षा की है। महाप्रभु चैतन्य, कबीर, नानक, दादू, गुरु गोविन्द तथा कुछ अन्य सुधारकों ने हिन्दुओं के इस पाप के विरुद्ध आवाज उठायी, परन्तु उनकी वाणियां बहरे कानों में पड़ीं। तब एक बाल-ब्रह्मचारी का प्रादुर्भाव हुआ, और उसने गुंजायमान शब्दों से हिन्दुओं में कर्तव्य की भावना उत्पन्न की और सम्पूर्ण आर्य-जगत् की हड्डियों तक को कंपा दिया। यह सुधारक था

महर्षि दयानन्द सरस्वती

इसने प्रत्येक मनुष्य के समानाधिकार का दावा किया और समाज को गुण-कर्म के अनुसार चार वर्णों में विभाजित करने की आवाज उठाई। जब यह महान् आचार्य कार्यक्षेत्र में उतरा तब हिन्दुत्व, धाराप्रवाह रूप में ईसाईयत में विलीन होता चला जा रहा था। उसने एक बुलन्द और आध्यात्मिक आवाज में रुकने का आदेश दिया और प्रवाहित होती धारा एकदम रुक गई। पथभ्रष्ट लोगों को पथ का निर्देश किया, देहरादून के मुंशी मुहम्मद उमर को पुनः ग्रहण करके अलखधारी नाम रखा, इसके बाद तो उन सैंकड़ों हिन्दुओं को—जो कि लालच आदि द्वारा सार्वजनिक वैदिक अक्षय वृक्ष की छाया से दूर हटा दिये थे—पुनः आर्य-धर्म में खींच लिया।

परिणामतः उच्चवर्ग के हिन्दुओं का, विरोधी धर्मों में प्रवेश एक भूतकालीन वस्तु हो गई। जब महर्षि दयानन्द ब्रह्मधाम को प्रस्थान कर गये तो आर्यसमाज ने अपने आचार्य के काम को उठाया। तब ईसाई मिशन ने दुराग्रही हिन्दुओं द्वारा पीड़ित अछूतवर्ग को पॉल के धर्म में परिवर्तित करने का सोचा। यह एक सरल और सीधा-सादा कार्य था। एक बार रामचरण चमार की चोटी कटी, उसके माथे पर पानी से क्रॉस के चिन्ह बनाये गये, उसने गोमांस खाना शुरू कर दिया, उसका नाम पीटर, जॉन अथवा पॉल रख दिया गया, उसे उसी कालीन पर बैठने का अधिकार प्राप्त हो गया, उसी कुएं से पानी खींचने का अधिकार मिल गया जिन का उपयोग सवर्ण हिन्दू करते हैं, और तो और वह ब्राह्मणों से हाथ भी मिलाने लगा। चमार, धेड़, डोम और पारसी हजारों की संख्या में ईसाईयत को अपनाने लगे। तब इस समस्या की ओर आर्यसमाज का ध्यान आकृष्ट हुआ, और आर्यसमाज ने इन पथभ्रष्ट लोगों को इनके पथ पर लाना शुरू किया तथा समाजियों ने लोगों को प्रश्रय और अभय देना, अपने धर्म को छोड़कर जानेवाले दलितों को शुद्ध करना आरम्भ कर दिया।

इस शुद्धि आन्दोलन का कट्टर-हिन्दुओं द्वारा प्रबल विरोध किये जाने के कारण यह प्रतीत होने लगा कि अछूतोद्धार का कार्य लगभग असम्भव हो जायेगा। परन्तु आर्यसमाज ने हल पर अपना दृढ़ हाथ रखकर भूमि को सुधार के बीज बोये जा सकने योग्य बनाना नहीं छोड़ा। सबसे प्रथम रहतियों की सामूहिक शुद्धि की गई। यह एक सिक्खों का वर्ग था, परन्तु खालसा लोग भी इन्हें अपने साथ दरी पर बैठने का अधिकार नहीं देते थे। सिक्ख-धर्म के संस्थापक श्री गुरू गोविन्दसिंह ने स्वयं इस वर्ग को 'कृपाण' द्वारा तैयार अमृत पिलाकर सिख-धर्म

में दीक्षित किया था। सन् १८९६ के मध्य में इस वर्ग के लोगों ने अपनी शुद्धि के लिये प्रार्थना की और अगले कुछ ही मासों में एक हजार से भी अधिक व्यक्ति आर्यसमाज में, भाइयों के रूप में प्रविष्ट कर लिये गये, इन लोगों को पूर्ण सामाजिक और धार्मिक अधिकार प्रदान किये गये। पहले पहले तो आर्यसमाजियों को अनेक कष्ट दिये गये, और आर्यसमाजियों का सामाजिक एवं जाति बहिष्कार किया गया। परन्तु १८९८ के अन्त तक यह विरोध-भाव समाप्त हो गया और लगभग एक हजार रहतिए हिन्दू समाज में खपा लिए गये।

१९०२ में आर्यसमाज ने स्यालकोट (पंजाब) में मेघों के उद्धार का प्रश्न अपने हाथ में लिया, इन मेघों को भी अछूत समझा जाता था। पहले तो यहाँ भी इस कार्य का तीव्र विरोध किया गया। हिन्दुओं द्वारा इन नये आर्यसमाजियों को पीड़ित करने के कार्य में मुसलमान भी सम्मिलित हो गये थे, परन्तु जब १॥ लाख से भी अधिक व्यक्ति अन्य आर्यों के समान अधिकार भोगने लगे तो यह विरोध अपनी प्राकृतिक मृत्यु से मर गया। और तब मुजफ्फरगढ़ और मुलतान जिले के ओड़, पंजाब के पहाड़ी प्रदेशों के डोम हजारों की संख्या में शुद्ध किये गये। एवं मेघों के उद्धार के लिये जम्बू और काश्मीर रियासत में तथा अन्यत्र आन्दोलन किया गया, परिणामतः ४० हजार से भी अधिक आर्यसमाज में प्रविष्ट हो गये और अब तक वे आते जा रहे हैं। इस प्रकार पंजाब पथप्रदर्शन करता रहा है, और पिछली 'सैंसस रिपोर्ट' (१९२१) से पता चलता है कि संयुक्तप्रान्त के आगरा और अवध का ईसाई मिशन इस बात की शिकायत करने लगा है, कि उनके द्वारा संचालित धर्म-परिवर्तन के कार्य में आर्यसमाजियों द्वारा रुकावटें डाली जाती हैं।

दिल्ली तथा उसके आस पास, आर्यसमाज उन सैंकड़ों अछूतों को पुनः हिन्दू-धर्म में ले आया जो केवल नाम-मात्र के ईसाई थे। हजारों धनकों, चमारों, रेगड़ों और भंगियों तक को भविष्य में ईसाईयों के होने वाले आक्रमणों से बचा लिया। ईसाई मिशनरियों ने तो निराश होकर यह धर्म-परिवर्तन का कार्य ही छोड़ दिया होता, यदि उन्हें अप्रत्याशित रुप से सहायता न मिल गई होती।

हिन्दुओं के सामूहिक रूप से धर्म-परिवर्तन के लिए अत्यधिक उत्साही होते हुए भी मुसलमानों को अपना यह काम छोड़ देना पड़ा और उनका यह कार्य भाग्य के सहारे तथा अति सूक्ष्म ढङ्ग से होने लगा। सैंसस रिपोर्ट से यह स्पष्ट हो जाता है कि १९११ से पंजाब में तथा अन्यत्र, मुसलमान भंगियों की संख्या कम हो गई है जब कि अनुपात से हिन्दू भंगियों की संख्या बढ़ गई है। संयुक्त-प्रान्त के सम्बन्ध में १९११ की सेन्सस रिपोर्ट के पृष्ठ ५४ पर कहा है:—इस्लाम में धर्म-परिवर्तन के उदाहरण इतने विरल हैं कि उनकी उपेक्षा की जा सकती है। परन्तु असहयोग-आन्दोलन के पूर्ण यौवन के दिनों में जब महात्मा गांधी ने स्वराज्य प्राप्त करने की शर्तों में एक यह भी शर्त रख दी कि अछूत वर्ण को हिन्दुओं में पूर्णरूप से मिला लिया जाय और उनका उद्धार किया जाय तो मुसलमान नेताओं ने इसे एक स्वर्ण अवसर समझा और हिन्दू अछूतों को इस्लाम में दीक्षित करने का एक आयोजन प्रारम्भ कर दिया।

मेरे लिये तो अस्पृश्यता के अभिशाप को उखाड़ फेंकना भारतीय राष्ट्रीयता की सुरक्षा के लिये एक आवश्यक शर्त है। अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (काँग्रेस) के ३४वें अधि-

वेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्षपद से २७ दिसम्बर १६१६ को अमृतसर में बोलते हुए मैंने राष्ट्रीयता को संकट में से निकालने के लिये, राष्ट्रीय-शिक्षण और अस्पृश्यता-निवारण इन दो साधनों पर बल दिया था। अस्पृश्यता-निवारण के सम्बन्ध में मैंने कहा था :—

'राष्ट्र में एक वस्तु की कमी है, वह क्या है? मुक्ति-सेना (साल्वेशन आर्मी) के जनरल बूथटकर ने 'सुधार योजना-समिति' के सम्मुख अपने वक्तव्य में कहा था कि ६॥ करोड़ भारतीय अछूतों को विशेष सुविधा दी जानी चाहिये क्योंकि वे ब्रिटिश सरकार के आधार-स्तम्भ हैं। मैं आप से निवेदन करूंगा कि आप इस वक्तव्य के अन्तस्तल में घुसकर जानने का प्रयत्न करें कि ये ६॥ करोड़ अछूत, सरकार के आधार स्तम्भ कैसे बन सकते हैं? जब कि आप इस पवित्र पण्डाल में इकट्ठे हुए हैं तो मैं आप से प्रार्थना करूंगा कि आप यह शपथ उठायें कि इन अछूतों के प्रति आप का व्यवहार इस प्रकार का हो कि उनके बच्चे आप के बच्चों के साथ कालेज और स्कूलों में पढ़ सकें, आप उन्हें अपने परिवारों में उसी प्रकार घुलने-मिलने दीजिये जिस प्रकार आप स्वयं अपने परिवारों में घुलते-मिलते हैं; इसका परिणाम यह होगा कि वे आपको राजनीतिक प्रवृत्तियों और प्रगति में आप के साथ अपने कन्धे भिड़ाकर चल सकेंगे। देवियो और सज्जनो! आप मेरे साथ मिलकर हृदय से प्रार्थना कीजिये कि मेरा यह स्वप्न सत्य सिद्ध हो—"

अमृतसर के कांग्रेस अधिवेशन के बाद मैंने गुरुकुल का कार्य सम्भाल लिया, परन्तु जब कांग्रेस का कलकत्ते में विशेष अधिवेशन हुआ तो मैं केवलमात्र इस कारण उसमें सम्मिलित

हुआ, क्योंकि मैंने स्वागत-समिति को एक प्रस्ताव भेजा हुआ था, जिसमें उस महान् राष्ट्रीय असेम्बली से यह प्रार्थना की गई थी कि वह कांग्रेसी प्रोग्रामों की सूची में अछूतोद्धार के कार्यक्रम को सम्मिलित कर ले। परन्तु दुर्भाग्य से उस प्रस्ताव पर विषय-समिति तक में विचार करने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

नागपुर के कांग्रेस अधिवेशन से पूर्व महात्मा गांधी मद्रास गये थे, वहां दलित-जाति के लोगों ने, अपनी स्थिति के सम्बन्ध में इस प्रकार के प्रश्न गांधी जी से किये कि वे हकला गये और उसके बाद स्वराज्य-प्राप्ति के लिए यह भी एक शर्त लगा दी कि १२ मास के अन्दर-अन्दर अस्पृश्यता दूर कर दी जानी चाहिये।

गुरुकुल का प्रबन्ध दूसरे हाथों में सौंपकर जब मैं १५ अगस्त १६२१ को दिल्ली पहुंचा तो दलितों का प्रश्न उग्ररूप धारण कर चुका था। तब मैंने दिल्ली में दलितोद्धार-सभा का संगठन किया और महात्मा गांधी को कार्यसमिति से आर्थिक सहायता दिलाने के लिये तार दिया। परन्तु बाद में मुझे पता लगा कि कांग्रेस इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कर सकती, और ६ सितम्बर १६२१ को मैंने एक पत्र हिन्दी में महात्मा जी को लिखा था उसका कुछ भाग इस प्रकार है :—

"मैंने लाहौर से तार दिया था कि मैं चाहता हूँ, कि प्रांतीय कांग्रेस कमेटी के द्वारा आर्थिक सहायता दी जाय परन्तु दिल्ली पहुंचने पर मुझे ज्ञात हुआ कि कांग्रेस के लिये अछूतोद्धार-कार्य के लिये व्यय करना असम्भव है। दिल्ली और आगरा के चमारों की केवलमात्र यह मांग थी कि उन्हें उन कुओं से पानी भरने दिया जाय, जिनसे हिन्दू और मुसलमान दोनों पानी

भरते हैं और उन्हें पानी पत्तों द्वारा न पिलाया जाया करे। मैं अनुभव करता हूँ कि कांग्रेस-कमेटी के लिये केवल इस मांग को भी पूरा करा सकना सम्भव नहीं है। केवल इतना ही नहीं मैंने जिस कांग्रेसी मुसलमान से इस कार्य के लिये सहायता मांगी, उसने उत्तर दिया कि यदि सार्वजनिक कुओं से हिन्दुओं ने अछूतों को पानी भरने की आज्ञा दे भी दी, तो मुसलमान उन्हें बल-प्रयोग द्वारा कुंओं से भगा देंगे क्योंकि चमार मुर्दा-पशुओं का माँस खाते हैं। मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि इन चमारों में से हजारों शराब और माँस को छूते भी नहीं हैं और जिन्हें मुर्दा मांस खाने की लत पड़ भी गई है अब वे भी आर्यसमाज के प्रचार के परिणामस्वरूप अपनी इस आदत को छोड़ते जा रहे हैं। मैंने यह पत्र आप को केवल सूचना देने के लिये लिखा है कि अब, मैं कांग्रेस कार्यसमिति से आर्थिक सहायता के लिये प्रार्थना नहीं कर सकता। मैं अपने सीमित स्रोतों के अनुसार जो कुछ कर सकता हूँ, वह सब करूंगा।"

एक अवसर और उपस्थित हुआ जब मैंने लखनऊ में होने वाले कांग्रेस के अधिवेशन के समय यह प्रयत्न किया कि कांग्रेस सच्चे हृदय से अस्पृश्यता-निवारण के प्रश्न को अपने हाथ में ले ले, परन्तु इस पत्र-व्यवहार का कुछ परिणाम नहीं निकला। इस पत्र-व्यवहार को मैंने 'माई पार्टिंग एडवाइस' के नाम कुछ समय पूर्व प्रकाशित कर दिया था और वहां देखा जा सकता है।

प्रकरण ५

तृतीय कारण

बाल-विवाह और पद्दलित स्त्री-समाज

"हे ब्रह्मन् ! हमारे राष्ट्र में ब्रह्मवान् ब्राह्मण उत्पन्न हों, बाण चलाने में कुशल, शत्रुओं को ताड़ना देने वाले महारथी-निर्भयी राजपुत्र उत्पन्न हों, दूध से तृप्त करने वाली गौएं, भार उठाने में समर्थ बैल, शीघ्रगामी घोड़े, व्यवहार-कुशल स्त्रियां, रथ पर स्थिर रहने एवं शत्रुओं को जीतने वाले सभ्य युवा पुरुष उत्पन्न हों। हमारे राजा के घर में वीर-पुरुष उत्पन्न हों, जिस-जिस कार्य के लिये हम प्रयत्न करें उस-उस कार्य में मेघ वर्षा करें, हमारे लिये औषधियां फलवाली होकर पकें। हमारे लिये कल्याणकारक विधान करो।"

आज से लगभग ६ हजार वर्ष पूर्व, जब से कि हमारी संस्कृति और सभ्यता का पतन आरम्भ हुआ है, प्रत्येक घर और प्रत्येक यज्ञशाला में उपर्युक्त प्रार्थना की जाती थी। यह प्रार्थना प्रत्येक स्त्री और पुरुष के हृदय से निकलती थी। इस प्रार्थना का वाणी से उच्चारण होता था और क्रियात्मक रूप से अनुसरण किया जाता था।

भगवान् द्वारा प्रदत्त ज्ञान और सत्य के उपदेष्टा (अर्थात् सच्चे ब्राह्मण) कैसे पैदा किये जा सकते हैं, समाज के रक्षक क्षत्रियों को किस प्रकार शक्ति से विभूषित किया जा सकता है कि वे अधर्म का नाश कर सकें, समाज के नेता किस प्रकार यज्ञों को पूर्ण कर सकते हैं कि समय पर वर्षा हो और अन्न, फल तथा वनस्पति की उत्पत्ति द्वारा जनसामान्य का ठीक-ठीक पोषण हो ? 'वेद' और जीवन-विज्ञान के अनुसार इस का एक-मात्र यही उत्तर हो सकता है, और वह उत्तर हमारे समाज के प्रथम कानून-निर्माता मनु के शब्दों में है—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राऽफलाः क्रियाः ॥

जिस समाज में नारियों का आदर सत्कार किया जाता है वहां देवताओं का निवास होता है (अर्थात् वहां सत्य पवित्रता सुख, शान्ति और सम्पदा का निवास होता है) परन्तु जहां उनका निरादर किया जाता है वहां सम्पूर्ण क्रियाएं असफल होती हैं ।

जब तक समाज में स्त्रियों का स्थान 'देवी' के रूप में था और वे अपने कर्त्तव्यों और अधिकारों में भाग बंटाती थी तब तक प्राचीन आर्यावर्त्त संसार का गुरु बना रहा। सम्पूर्ण विश्व

में आर्यों की समाज-व्यवस्था का अनुकरण किया जाता था और इस प्रकार यह प्राचीन देश सच्चे अर्थों में 'आर्यावर्त्त' कहा जाता था। हमारे प्रथम स्मृतिकार के शब्दों में—

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मना।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

सम्पूर्ण विश्व के निवासी ब्राह्मणों के चरणों में बैठ कर सभ्यता का पाठ पढ़ने के लिये इस देश में आते थे। उस समय कोई भी व्यक्ति आत्मविनाश को निमन्त्रण दिये बिना आर्य देवियों को कामातुर चक्षुओं से नहीं देख सकता था, कोई भी पापी दण्ड पाये बिना नहीं बच सकता था। परन्तु जब हममें से ही अभिमान और लम्पटता में चूर होकर दुःशासन जैसे राक्षस पैदा हो गये और समाज की द्रौपदियों के सतीत्व पर आक्रमण करने लगे तो महाभारत के युद्ध का जन्म हुआ; इसने न केवल हमारी पवित्रता और पराक्रम को नष्ट कर दिया, अपितु सच्चा ब्राह्मणत्व और रक्षक क्षात्र-धर्म भी नष्ट हो गया। तब वाममार्गियों ने गुप्त रूप से आमोद-प्रमोद के आयोजन आरम्भ किये, परिणामतः समाज अव्यवस्थित हो गया। देश के विभिन्न भागों में छोटे-छोटे राजा उठ खड़े हुए और वे ईर्ष्या और द्वेषवश एक दूसरे से लड़ने-झगड़ने लगे। उन का एक-मात्र यदि कोई आदर्श था, तो वह था विजित प्रदेशों का उपभोग और सामाजिक अव्यवस्था को जन्म देना।

सारांश यह है कि लगभग १३०० वर्ष पूर्व हर्षवर्धन के राज्यकाल के समय भारत की अवस्था यह थी। "बाल-विवाह एक अज्ञात वस्तु थी, इसलिये बाधित वैधव्य नहीं था और हिन्दू समाज की शान्ति में कोई खलल नहीं पैदा हुआ।" परन्तु जब अत्यन्त संगठित रूप से, सुदृढ़ धार्मिक श्रद्धा से और पूर्ण पौरुष

के साथ मुस्लिम आक्रान्ताओं ने इस देश पर आक्रमण कर के असंगठित हिन्दू शासकों को पराजित कर दिया तो हिन्दू नव-युवतियां विजेताओं की कामुकता की शिकार होने लगीं। उत्तर-भारत के कुलाचारभ्रष्ट हिन्दुओं ने हिन्दू घरों पर मुस्लिम गाजियों के इन आक्रमणों से बचने के लिये बाल-विवाह और पर्दे जैसी अप्राकृतिक वस्तुओं को रिवाज के रूप में अपने समाज में ग्रहण कर लिया। छोटी छोटी कन्याओं का छोटे छोटे लड़कों से ब्याह होने लगा और कभी कभी तो उदरस्थ बच्चों का वाग्दान कर दिया जाता था।

वह निरंकुश और निर्दयी मुसलमानी शासन अब भूत की वस्तु हो गया है, हिन्दू समाज की जीवनीशक्ति को नष्ट करने वाली सामाजिक कुरीतियों को समाप्त कर देने के लिये परिस्थितियां गत ८० वर्ष से अनुकूल हैं। परन्तु रिवाज के जाल में जकड़ा हुआ हिन्दुत्व अभी तक सोया हुआ है और हिलने तक में आपत्ति करता है, भारत के दूरतम कोने तक हिन्दुओं में अब भी बाल विवाह प्रचलित है। १९२१ की जनगणना की निम्न तालिका के अनुसार मैसूर राज्य में सनातनी हिन्दुओं, मुसलमानों, और ईसाईयों में तुलनात्मक दृष्टि से बाल विवाह का प्रचलन इस प्रकार था :

५ वर्ष की आयु से पूर्व विवाह हुए

	लड़के	लड़कियां
हिन्दू	७५	१२८
ईसाई	×	१
मुसलमान	२	२

५ से १० वर्ष की आयु में विवाह हुए

	लड़के	लड़कियां
हिन्दू	४२४	२८५१
ईसाई	१	५
मुसलमान	६	२७

कुल ५५ लाख निवासियों में से लगभग ३॥ लाख मुसमान हैं और एक लाख ईसाई तथा अन्य सम्प्रदाय हैं। यदि मुसलमानों और ईसाईयों में भी बालविवाह उसी प्रकार प्रचलित होता जिस प्रकार हिंदुओं में है तो उन दोनों सम्प्रदायों में दस वर्ष की आयु तक ब्याहे गये लड़के और लड़कियों की कुल संख्या ३४७८ (यह संख्या दस वर्ष की आयु तक ब्याहे गये हिन्दू बच्चों की है) का ग्यारहवां भाग होती अर्थात् लग-भग ३१६ होती। मुसलमान और ईसाईयों में दस वर्ष की आयु तक ब्याहे गये बच्चों की कुल संख्या ४४ तक ही पहुंचती है।

जैसा कि जनगणना के प्रतिवृत्तों से प्रगट है इस का परिणाम सम्पूर्ण भारत में भयंकर रूप से दिखाई दिया है। १९२१ की जनगणना के अनुसार पौराणिक कट्टर हिंदुओं में आर्यसमाजियों, ब्रह्मसमाजियों, सिक्खों, जैनियों और बौद्धों को पृथक कर देने के बाद बालविधवाओं की ठीक संख्या निम्न प्रकार से है :—

आयु	कुल विधावाएं
०—१	५९७
१—२	४९४
२—३	१,२५७
३—४	२,८३७
४—५	६,७०७

५-१०	९५,०३७
१०-१५	२,२३,१४७
१५-२०	३,९६,१७२
कुलसंख्या	७, ३६, २४८

ये संख्याएं भयंकर रूप से स्तब्ध कर देने वाली हैं। ७ लाख विधवाओं में से हजारों की संख्या में विधवाएं सतीत्व का जीवन व्यतीत करती हैं और सम्भवतः यह उन की तपस्या का ही फल है कि हिंदुसमाज आज भी अपनी सत्ता को स्थिर रखे हुए हैं। परन्तु प्रबल बहुमत उन्हीं का है जो कि अपने घरों को छोड़ने के लिये इस कारण बाधित हुई हैं क्योंकि उन्हीं के सगे स्त्री पुरुष सम्बन्धियों ने उन पर अकथनीय अत्याचार किये अथवा कामुकता-पूर्ण आक्रमण किये। और, उन्हें या तो मुसलमानों का आश्रय लेना पड़ा अथवा वेश्याओं को जन्म देना पड़ा। इस प्रकार एक ओर तो उन के कारण हिन्दुओं की संख्या कम हो गई दूसरी ओर गोमांसाहारी समाज की संख्या और शक्ति बढ़ गई।

केवलमात्र यही एक बुराई नहीं है जो इस प्रकार बढ़ गई है। परन्तु यदि एक विवाहित छोटी आयु की लड़की विधवा नहीं हो पाती तो उस का गर्भाधान उपयुक्त आयु से पूर्व हो जाता है और वह दुर्बल बच्चों को जन्म देती है। इसी वस्तु ने हिन्दुओं को एक दुर्बलों की जाति बना रखा है। आयुर्वेद के हिन्दूशास्त्रों ने इस व्यवस्था की घोर निन्दा की है। सुश्रुत के ८ वें अध्याय ४७ और ४८ वें श्लोक में भगवान धन्वन्तरि कहते हैं:

ऊनषोडशवर्षायामप्राप्तः पञ्चविंशतिम् ,
यद्याधत्ते पुमान् गर्भं कुक्षिस्थः स विपद्यते ॥
जातो वा न चिरञ्जीवेज्जीवेद्वा दुर्बलेन्द्रियः ।
तस्मादत्यन्तबालायां गर्भाधानं न कारयेत् ॥

यदि १६ वर्ष से कम आयु की लड़की २५ वर्ष से कम आयु वाले पुरुष से गर्भाधान कराती है तो प्रायः गर्भपात हो जाता है, और यदि गर्भपात नहीं होता तो बच्चा बहुत देर तक जीवित नहीं रहता, यदि जीवित रह भी जाता है तो वह अत्यन्त दुर्बलेन्द्रिय होता है इसलिए बहुत छोटी आयु की बाला का गर्भाधान नहीं कराना चाहिए।

महामुनि धन्वन्तरि ने १६ वर्ष से कम आयु की कन्या को 'अत्यन्तबाला' कहा है। परन्तु हिन्दू समाज में प्रतिदिन १३ वर्ष की और कभी कभी तो १२ वर्ष की कन्या को एक बच्चे के साथ देखा जा सकता है और तब भी उस समाज के अन्तःकरण पर कोई चोट नहीं लगती। इसका परिणाम यह हो रहा है कि मुसलमान द्विगुणित और त्रिगुणित होते जा रहे हैं जबकि हिन्दुओं की संख्या उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। १६११ के जनगणना सम्बन्धी प्रतिवृत्त में कहा गया है:—

"गत दशाब्दि में मुसलमानों की संख्या ६.७ प्रतिशत बढ़ गई है जबकि हिंदुओं की ५ प्रतिशत ही बढ़ी है। इसमें एक कारण यह भी है कि हिंदुओं तथा अन्य धर्मों से लोग थोड़े २ परन्तु निरंतररूप से इस्लाम में दीक्षित हो रहे हैं, परतु इस अपेक्षाकृत वृद्धि का प्रमुख कारण यह है कि पैगम्बर के अनुयायियों में प्रजनन-शक्ति का बाहुल्य है। इसका एक आंशिक कारण यह भी हो सकता है कि उनका भोजन अधिक पौष्टिक होता है परन्तु

प्रमुख कारण यह है कि हिन्दुओं की अपेक्षा मुसलमानों की सामाजिक रीतियां जनसंख्या को बढ़ाने में अधिक उपयुक्त और अनुकूल हैं। मुसलमानों में विवाह सम्बन्धी प्रतिबन्ध अपेक्षाकृत कम हैं, बालविवाह का, प्रायः अभाव है और विधवाएं बहुधा पुनर्विवाह कर लेती हैं।

"मुसलमानों में अपेक्षाकृत अधिक प्रजनन-शक्ति है इसकी पुष्टि इसी से हो जाती है कि १५-४० वर्ष की आयु की कुल स्त्रियों में मुसलमानी विवाहित स्त्रियों की संख्या अनुपाततः अधिक है जबकि हिन्दू विवाहित स्त्रियों की संख्या कम है। इसी का परिणाम यह है कि १५-४० वर्ष के प्रत्येक मुसलमान व्यक्ति के पीछे ५ वर्ष तक की आयु के ३७ बच्चे हैं जबकि हिन्दुओं में केवल ३३ हैं। १८८१ से अबतक मुसलमानों की संख्या में २६.५ प्रतिशत वृद्धि हुई है और हिन्दुओं में १५.१ प्रतिशत ही बढ़ती हुई है।

संक्षेप में सार यह है कि हिन्दुओं की तुलनात्मक दृष्टि से अवनति का मुख्य कारण बाल-विवाह और बाल-विधवाओं का पुनर्विवाह न होना है। इस सब से बढ़ कर, हिन्दू मुसलमानों के बीच दंगों और द्वेष का एक कारण हिन्दू बाल विधवाओं की समस्या भी है।

———

प्रकरण ६

चौथा कारण

आश्रमधर्म का भङ्ग

सनातन वैदिकधर्म की शिक्षाओं के अनुसार सामान्य मनुष्य की जीवन अवधि सौ वर्ष समझी जाती थी। इसे २५ वर्ष के चार समान भागों में विभक्त किया जाता था। जीवन की इस सामान्य अवधि को विधिवत जीवनयापन द्वारा तथा विशेष साधनों द्वारा ३०० वर्ष तक और कभी-कभी ४०० वर्ष तक खींचा जा सकता था। इसे सामान्य रूप से इन चार भागों में विभक्त किया जाता था : (१) ब्रह्मचर्य अथवा विद्यार्थी जीवन (२) गृहस्थ जीवन (३) वानप्रस्थ जीवन अर्थात् चरित्र की कमियों को पूरा करने के लिए साधु जीवन व्यतीत करना एवं आध्यात्मविद्या तथा चिन्तन का अभ्यास (४) सन्यास जीवन अर्थात् सम्पूर्ण सांसारिक सम्बन्धों को समाप्त करके विश्वभर में सत्य और

सदाचार का प्रचार करना तथा त्यागमय जीवन व्यतीत करना।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि आश्रमधर्म की सम्पूर्ण रचना एक ही चूल पर लटक रही है और वह है ब्रह्मचर्य। जब तक इन्द्रियां विधिवत और उपयुक्त ढङ्ग से अभ्यस्त न हो जायें और शरीर की भौतिक वृद्धि समरस न हो, कर्मेन्द्रियां, ज्ञानेन्द्रियां, मन, बुद्धि, स्मृति और अहंकार अपने नियन्त्रण में न हों तब तक मनुष्य जीवन का उत्तरभाग (अर्थात् शेष तीन आश्रम) समरस रूप में और प्राकृतिक नियमों के अनुरूप नहीं व्यतीत हो सकता।

प्राचीन भारत में लड़कों और लड़कियों के लिए पृथक-पृथक ब्रह्मचर्य आश्रम थे और इनमें शारीरिक और बौद्धिक शिक्षण होता था। भारत में बौद्धकाल तक में युवकों का शिक्षण किस प्रकार होता था यह नालन्दा और तक्षशिला के अवशेषों से प्रगट है। ये शिक्षणालय गुरुकुल कहलाते थे क्योंकि आचार्य विद्यार्थियों का स्थानापन्न माता-पिता होता था। एक समय था जब कि उच्चवर्ग के हिन्दूवयस्क गुरुकुल शब्द से ही अपरिचित थे और शिक्षित भारतीय गुरुकुल शिक्षण पद्धति के प्रवर्तकों के प्रयत्नों को व्यंग-दृष्टि से देखते थे। परन्तु अब यह भूत की वस्तु हो गई है। प्रत्येक भारतीय और प्रगतिशील विदेशी भी ब्रह्मचर्य को समझता है इसलिये इसके अधिक विस्तार में जाना निरर्थक है। इतना कहना ही पर्याप्त है कि ब्रह्मचर्य के यथार्थ तत्व के लुप्त होने पर हिन्दू जाति की जीवनी शक्ति समाप्त हो गई और वे संसार के साहसी अभियात्रियों की महत्वकांक्षाओं की शिकार हो गई।

भगवान धन्वन्तरि ने लड़कों के लिए विवाह योग्य आयु २५ वर्ष और कन्याओं के लिए १६ वर्ष नियत की है। उस महामुनि का कहना है :

पञ्चविंशे ततो वर्षे पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वा गतवीर्यौ तौ जानीयात्कुशलो भिषक् ॥

विवाह के लिए पुरुषों की न्यूनतम आयु २५ वर्ष और स्त्रियों के लिये १६ वर्ष निर्धारित की गई है। परन्तु यह तो ब्रह्मचर्य के निमित्त आवश्यक उपायों में से एक है। एक निदिष्ट आयु तक अविवाहित रहना व्यर्थ होगा यदि शारीरिक और मानसिक अभ्यास द्वारा मनोवृत्तियों पर नियन्त्रण नहीं किया जाता, उपयुक्त चिन्तन और परिश्रम द्वारा इन्द्रियों को वश में नहीं किया जाता और 'उच्च विचार तथा सादा जीवन' की एक उक्ति को चरितार्थ नहीं किया जाता। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए शिक्षण के वर्तमान स्वरूप में पूर्णरूप से परिवर्तन कर देना होगा। वस्तुतः आर्यसमाजियों में इस प्रकार के प्रयत्न आरम्भ हो गये हैं, प्राचीन विचारों के कट्टर सनातनियों में भी हलचल प्रारम्भ हो गई है, जैनियों ने भी इनका अनुसरण किया है। परन्तु हिन्दू जाति को प्राचीन भौतिक और नैतिक शक्ति प्राप्त कराने के लिए संगठित और प्रचंड प्रयत्नों की आवश्यकता है।

वेदों की आज्ञा है कि विवाहित युगल केवलमात्र स्वस्थ सतानोपत्ति के लिए ही सहवास करें। २५ वर्ष के वैवाहिक जीवन में उन्हें केवल दस बच्चे ही उत्पन्न करने चाहियें, गर्भधारण के समय से लेकर ढाई वर्ष का समय प्रत्येक बच्चे के पालनपोषण लिए रहना चाहिये, इस समय में युगल को सम्भोग से सदा दूर रहना चाहिए। परन्तु आज का हिन्दू समाज वर्तमान सभ्य कहे जाने वाली दुनिया के पीछे भागा जा रहा है और कानून सम्मत वेश्यावृत्ति हमारे राष्ट्र के शारीरिक और नैतिक स्वास्थ्य को नष्ट करती जा रही है।

आर्यसमाज के संस्थापक ऋषि दयानन्द ने आर्यशास्त्रों के आधार पर शिक्षकों और विद्यार्थियों के पथप्रदर्शन के लिए ठोस परामर्श दिया है—

'शिक्षकों का कर्त्तव्य है कि वे अपने शिष्यों के हृदयों में ठोस और उपयुक्त शिक्षाएं भरते रहें। इस बात की विशेष सावधानी रखें कि ब्राह्मणों के अतिरिक्त राजकुमारों, क्षत्रियों, वैश्यों और प्रतिभाशाली शूद्रों की शिक्षण में उपेक्षा न हो। क्योंकि यदि अकेले ब्राह्मणों का ही शिक्षण होगा तो विज्ञान, धर्म, राजनीति, सम्पत्ति किसी में भी हमारी प्रगति न होगी। कारण यह है कि ब्राह्मणों को, जिनका प्रमुख कार्य शिक्षा प्राप्त करना और शिक्षण देना है, अपनी आजीविका के लिए क्षत्रिय आदि वर्णों पर निर्भर रहना पड़ता है और उन्हीं के लिये वे शास्त्रकार और कानून निर्माता हैं। इस कारण ब्राह्मणों को सभी बाधाओं तथा क्षत्रिय आदि वर्णों के भय से मुक्त होना चाहिये और ये वर्ण अशिक्षित होने पर ब्राह्मणों या प्रदत्त शिक्षणों की यथार्थता और अयथार्थता को जांचने में असमर्थ होंगे। वे ब्राह्मण अवसर पाकर अपनी शक्ति का उपयोग अपने स्वार्थों के लिए करने लगेंगे, छलकपट और पाखण्ड करने लगेंगे और जो चाहेंगे वही करेंगे; इन्हें उदाहरण बनाकर अन्य वर्ग भी तब अनुसरण करने लगेंगे। परन्तु जब क्षत्रिय तथा अन्य वर्ग भी अच्छी प्रकार शिक्षण प्राप्त करेंगे तो अन्य वर्गों में अपनी स्थिति को उच्च बनाये रखने के लिये गम्भीरता और प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करेंगे और सत्य मार्ग का अनुगमन करेंगे। तब वे अनुपयुक्त शिक्षण नहीं कर सकेंगे और न ही स्वार्थमय एवं पाखण्डमय जीवन बिता सकेंगे। इसलिये उन्हें तो न केवल अपने लिए अपितु सम्पूर्ण जाति के कल्याण के लिये क्षत्रिय आदि अन्य वर्णों को वेद, विज्ञान, दर्शन आदि विद्याओं का शिक्षण देना चाहिये।……जब सभी वर्ग सुशिक्षित और सुसंस्कृत होंगे तो कोई भी असत्य, कपटतापूर्ण और अधार्मिक कृत्यों पर आचरण न करेगा।"

कठोर रूप से ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन किये बिना ठोस

शिक्षा असम्भव है। उपयुक्त संगठन तब तक असम्भव है जब तक जाति में इच्छा और जीवन न हो, उसके सम्मुख उद्देश्य न हो, उसमें पूजा की भावना न हो और जीवन-यापन की एक विशिष्ट पद्धति न हो। ब्रह्मचर्य के विच्छेद से हमारा राष्ट्रीय जीवन अस्तव्यस्त हो गया, जातिभेद दृढ़ हो गया, शास्त्रों की उपेक्षा होने लगी और आर्यसंस्कृति समाप्त हो गई। जब गुरुकुल शिक्षा पद्धति का पुनरुद्धार कर दिया जायगा तो ब्रह्मचर्य पुन-र्जीवित हो उठेगा और तब पतनोन्मुख हिन्दू समाज की गति को रोक लग जायगी—यह हम सहज ही विश्वास कर सकते हैं।

हिन्दू सुधारकों द्वारा प्रस्तुत उपचार

उत्तर भारत में कबीर और नानक ने दक्षिण भारत में अन्य साधु-सन्तों ने समय समय पर हमारी विच्छिन्न होने की प्रवृत्तियों को रोकने का प्रयत्न किया तथा समाज में अन्दर घुसी हुई धार्मिक और सामाजिक कुरीतियों को सुधारने का प्रयत्न किया, परन्तु उनके सम्पूर्ण प्रयत्न एकांगी और संकुचित सिद्ध हुए। पंजाब में गुरु गोविन्दसिंह ने और महाराष्ट्र में छत्रपति शिवाजी ने तलवार उठाई और भारत को विदेशी दासता से मुक्त करने का राजनीतिक दृष्टि से प्रयत्न किया। परन्तु अपने दास देश को मुक्त करने के उनके प्रयत्न खिलती हुई कली को काट देने के समान सिद्ध हुए और एक तीसरी शक्ति आ कूदी, यह तीसरी शक्ति केवल शारीरिक शक्ति में ही आगे नहीं बढ़ी हुई थी अपितु कूटनीतिक दांवपेचों में अद्भुत रीति से अभ्यस्त, संगठन दृष्टि से सुदृढ़ और देशभक्ति की भावना से परिपूर्ण थी।

कुछ समय के लिये प्रतीत होने लगा कि ब्रिटिश लोगों ने कानून और व्यवस्था लागू करके भारत को अस्तव्यस्त तथा विच्छिन्न होने से बचा लिया है, परन्तु समय ने सिद्ध कर दिया

कि विजेता जाति केवलमात्र जन-हित से प्रेरित होकर कार्य नहीं करती। यह तो न केवल निरर्थक है अपितु असम्भव भी है कि इस छोटी-सी पुस्तिका में हिन्दुओं पर ब्रिटिश शासन के सामाजिक और राजनीतिक प्रभाव को दर्शाया जा सके। यहां तो इतना ही कह देना पर्याप्त है कि लोगों ने इस प्रभाव को ईस्वी सन् की बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में भी अनुभव करना शुरू किया और सन् १६०६ में हिन्दुओं ने संगठन के प्रयत्न आरम्भ किये।

सङ्गठन के विचार का जन्म और उसकी वृद्धि

साम्प्रदायिक दृष्टि से हिन्दुओं के सङ्गठित होने का विचार पहले-पहल पंजाब में उठा। पंजाब के मुसलमानों ने सर सय्यद-अहमद की राजनीतिक क्षेत्र से दूर रहने की नीति से असन्तुष्ट होकर एवं मुसलमानों को राजनीतिक दृष्टि से सङ्गठित करने के लिये मुस्लिमलीग की आधारशिला रखी। हिन्दुओं ने इसका अनुकरण किया और परिणामतः पंजाब हिन्दू-सभा की स्थापना हुई और पूरे चार वर्ष तक यह संस्था पंजाब की चारदीवारी में बन्द रही। परन्तु ७ और ८ दिसम्बर १६१३ को अम्बाला में हुए पांचवें अधिवेशन में इस संस्था के रङ्गमंच पर से निम्न चिरस्मरणीय प्रस्ताव पास किया गया।

"इस सभा की यह सुदृढ़ सम्मति है कि सम्पूर्ण भारत में तथा अन्यत्र हिन्दू जाति के हितों की रक्षार्थ और उचित उपायों के विधान के लिये यह आवश्यक है कि सन् १६१५ में हरिद्वार में कुम्भ के अवसर पर समस्त भारतीय हिन्दुओं की ओर से एक महाधिवेशन किया जाय, यह सभा निम्न सज्जनों से प्रार्थना करती है कि वे इस उद्देश्य की पूर्त्ति के लिये आवश्यक प्रबन्ध करें।" यद्यपि इस सम्मति के लिये भारत के विभिन्न भागों से २६ हिंदू नेता चुने गये थे और उन्हें यह भी अधिकार दिया

गया था कि वे इस संख्या को बढ़ा भी सकते हैं, परन्तु २४ सितम्बर १९१४ को देहरादून में थे जब इस समिति का प्रारम्भिक अधिवेशन हुआ तो कुल ५ सज्जनों ने इसमें भाग लिया, इन पांच में से तीन तो देहरादून के ही थे। इस अधिवेशन में कार्यालय के लिये कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की गई और २००० रुपये का बजट पास किया गया। परन्तु इस समिति के मन्त्री के प्रतिवृत्त के अनुसार—"कुछ कारणों से उपर्युक्त समिति के अधिवेशन द्वारा निर्दिष्ट योजनाओं और कार्यालय निर्माण के कार्य को क्रियान्वित नहीं किया जा सका। इसी बीच १९१४ की समाप्ति पर अम्बाला के आदरणीय रायसाहब मुरलीधर के सभापतित्व में फिरोजपुर में पंजाब हिन्दूसभा का छठा अधिवेशन हुआ और उसमें अम्बाला अधिवेशन के प्रस्ताव की पुनः पुष्टि की गई।

इसके बाद प्रस्तावित अखिल भारतीय हिन्दूसभा के लिये नियुक्त प्रधानमन्त्री लाला सुखबीरसिंह ने बार बार अनुरोध किये जाने पर अम्बाला में नियुक्त समिति के सदस्यों तथा सार्वजनिक क्षेत्र में काम करने वाले हिंदू नेताओं को एक विज्ञप्ति-पत्र भेजा और संवत् १९७२ में कुम्भ के अवसर पर होने वाले हिंदूसभा के अधिवेशन के सम्बन्ध में परामर्श मांगे तथा उसमें सम्मिलित होने की प्रार्थना की। इसके बाद १३ फरवरी १९१५ को हरिद्वार में, १७ फरवरी को लखनऊ में और २७ फरवरी को दिल्ली में अधिवेशन किये गये। दिल्ली में राज्य-परिषद् के हिन्दू सदस्यों से भी भेंट की गई। "यह निश्चय किया गया कि सभा का प्रधान कार्यालय दिल्ली में रखा जाय, पहले से स्थापित 'आल इण्डिया हिन्दू एसोसियेशन' के नियमों के आधार पर नियम तैयार किये जाय और उन्हें हिन्दू नेताओं में प्रचारित किया जाय एव उन हिन्दू नेताओं को उस प्रारम्भिक अधि-

वेशन में सम्मिलित होने के लिये नियन्त्रित किया जाय।"

इस अधिवेशन का सभापति कासिम बाजार के महाराजा मुनीन्द्रचन्द्र नन्दी को निर्वाचित किया गया और इस आन्दोलन के लिये आशीर्वाद प्राप्त करने के हेतु मेरठ कमिश्नरी के कमिश्नर को निमन्त्रित किया गया। इसलिये स्वभावतः इस अधिवेशन की सम्पूर्ण की सम्पूर्ण कार्यवाही किसी विशिष्ट रङ्ग से रंगी हुई और सरकारी दबाव से दबी हुई प्रतीत होती थी। सभापति महोदय ने अपने भाषण को समाप्त करते हुए कहाः—

"हिन्दू होने के नाते तथा धर्मभीरु स्वभाव के कारण हम सरकार और सम्राट की राजभक्त प्रजा हैं और हम अपने पूरे सामर्थ्य से ब्रिटिशों और उनके सहयोगियों की विजय के लिए प्रार्थनाएं करते रहते हैं।" और कमिश्नर ने उसी स्वर में अपना स्वर मिलाते हुए कहा—"सभापति के भाषण में जहां कहीं ब्रिटिश सरकार और महामहिम सम्राट का निर्देश किया गया है वहां सर्वत्र एकत्रित श्रोताओं ने राजभक्ति पूर्ण भावनाओं का प्रदर्शन किया है। इस से मैं बहुत अधिक प्रभावित हुआ हूँ।"

इस प्रदर्शन के समाप्त होने पर विषयसमिति की कई दिनों तक मीटिंग हुई, इस में सभा के नियम बनाये गये और उद्देश्यों की व्याख्या की गई। इस संस्था का "सार्वदेशिक हिन्दूसभा" रखा गया और इसके उद्देश्य इस प्रकार घोषित किये गये—

क. हिन्दू जाति के विभिन्न भागों में इस प्रकार एकता पैदा करना तथा घनिष्ठ सम्पर्क स्थापित करना कि वे एक शरीर के विभिन्न अंग प्रतीत हों।

ख. हिन्दू जाति में विस्तृत रूप से शिक्षा का प्रसार करना।

ग. हिन्दू जाति के विभिन्न वर्गों की अवस्था को सुधारना तथा उन्नत करना।

घ. जब कभी जहां कहीं आवश्यकता हो हिन्दू हितों की रक्षा करना तथा उन्हें आगे बढ़ाना ।

ङ. हिन्दुओं तथा अन्य भारतीय जातियों के बीच सद्भावना उत्पन्न करना और उन के साथ में भी पूर्ण व्यवहार करना, तथा सरकार के साथ राजभक्त के रूप में सहयोग करना ।

च. सामान्य रूप से जाति के धार्मिक, नैतिक, शैक्षणिक, सामाजिक और राजनीतिक हितों की सुरक्षा के आवश्यक पग उठाना ।

नोट—यह सभा हिन्दुओं के किसी विशिष्ट वर्ग या वर्गों का पक्ष नहीं लेगी, न उनके सम्बन्धों में स्वयं हस्तक्षेप करेगी, न ही कोई विरोध करेगी ।

मुझ से भी इस सभा का सदस्य होने को कहा गया और मुझे महात्मा गांधी को भी प्रेरणा करके इसमें सम्मिलित होने को कहा गया (उस समय गांधीजी गुरुकुल में मेरे अतिथि थे) परन्तु मेरे जैसे व्यक्ति के लिये—जिसने १८ वर्ष मे वकालत छोड़ रखी हो और २० वर्ष से भी अधिक समय से ब्रिटिश भारतीय सरकार की शिक्षण पद्धति से क्रियात्मक असहयोग कर रखा हो—स्वभावतः इस प्रकार के आंदोलन में सहयोग दे सकना सम्भव न था, दूसरे को प्रेरणा करने की बात तो दूर रही ।

बहुत बाजों-गाजों के साथ 'सार्वदेशिक हिन्दू सभा' की स्थापना की गई । कासिम बाजार के महाराजा सभापति चुने गये, तीन शंकराचार्यों सहित १३ उपसभापति चुने गये, लाला सुखबीरसिंह प्रधानमन्त्री नियुक्त हुए उनके चार सहकारी मन्त्री बनाये गये और देश के सभी प्रांतों से चुन २ कर कार्यकारिणी के ५० सदस्य चुने गये और यह प्रतीत होने लगा कि यह संस्था अत्यल्प काल में हिन्दू समाज का कायाकल्प कर देगी ।

सभा के प्रतिवर्ष वार्षिक अधिवेशन होने लगे और विशेषा

धिवेशन भी होने लगे, हिन्दू हितों की रक्षार्थ प्रस्ताव पास किये जाने लगे, परन्तु हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों की अवस्था सुधारने तथा उनकी दशा को उन्नत करने के लिये क्रियात्मक रूप से कुछ भी नहीं किया गया। हरिद्वार में हर की पौढ़ी पर गङ्गा का जल अबाधित रुप से रहे, गोरक्षार्थ और आने वाले सुधारों में हिन्दू-हितों की रक्षार्थ संयुक्तप्रांत के गवर्नर, वायसराय और भारत-मन्त्री के पास डेपूटेशन तथा निवेदनपत्र (मेमोरेण्डम) भेजे गये, परन्तु ये शानदार प्रयत्न अत्यल्प फलदायक सिद्ध हुए।

प्रयाग के कुम्भ मेले के अवसर पर हुए सभा के चौथे अधिवेशन में पास किये गये प्रस्तावों से प्रगट होता है कि अन्य बातों के साथ सभा अपने मुसलमान भाइयों को प्रसन्न करने के लिये अत्यधिक उत्सुक थी। हिन्दू-मुस्लिम समस्या के सम्बन्ध में सभा का ८वां प्रस्ताव इस प्रकार था—"गत वर्ष बंगाल और संयुक्तप्रांत में हिन्दू-मुसलमानों के बोच दंगे हुए, उनके सम्बन्ध में इस सभा की सम्मति में निम्न कारण प्रमुख थे—

(क) दोनों भगिनी जातियों में अन्दर तक घुसे हुए और देर से परिपुष्ट एक दूसरे की धार्मिक भावनाओं के प्रति निरादर का भाव।

(ख) जलूसों और प्रदर्शनों के निमित्त बनाये गये नियमों और समझौतों के प्रति अवहेलना का भाव।

(ग) उपद्रवों को रोकने तथा नियन्त्रित करने के लिए प्रबन्ध की अपर्याप्तता तथा पहले से सावधानी के रूप में किसो कदम का न उठाना।

इसलिए सभा (१) मुस्लिम और हिन्दू नेताओं को निमन्त्रण देती है कि वे अपनी अपनी जातियों को यह भली-भांति समझायें कि अपने पड़ौसियों की धार्मिक भावनाओं का आदर करना, पारस्परिक सहयोग को भावना रखना और पारस्प-

रिक सम्मान आज की सर्वप्रथम आवश्कतायें है और इन्हें परस्पर किये गये समझौतों के प्रति सहयोग भावना रखने के लिये प्रेरणा करें, और (२) अधिकारियों से प्रार्थना करती है कि वे धार्मिक उपद्रवों के दमन के लिए दोनों जातियों के प्रतिनिधियों का पूर्ण सहयोग प्राप्त करें।

यह सभा शाहाबाद और गया आदि कुछ गांवों के उपद्रवियों की कठोर शब्दों में निन्दा करती है और सरकार से प्रार्थना करती है कि वह सार्वजनिक हिन्दू मुसलमान नेताओं का एक संयुक्त कमीशन नियुक्त करे जो कि उपद्रवों के कारणों की जाच करे और इसप्रकार के उपद्रवों की पुनरावृत्ति को रोकने के उपाय सुझाये, तथा दोनों जातियों के बीच सद्भावनापूर्ण सम्बन्ध उत्पन्न करे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह सभा सरकार और मुस्लिम नेताओं से सहयोग करने को प्रस्तुत है।"

सन् १९१८ का वर्ष गढ़वाल में भोज्य पदार्थों के अकाल के साथ आरम्भ हुआ। आर्यसमाज की दोनों पार्टियों और प्रयाग सेवासमिति द्वारा सचालित 'अकाल निवारक निधियों' की भांति हिन्दूसभा ने भी एक अकाल-सम्बन्धी निधि की स्थापना की और गंगोत्री तथा गंगाघाटी के ऊंचे प्रदेशों में अकाल पीड़ितों की सहायतार्थ अपने कुछ दल भी भेजे। इससे सभा ने लगभग दस हजार रुपये बचाये और इन्हीं रुपयों से सभा के स्थायी कोष की स्थापना हुई। भारत में शासन-सम्बन्धी सुधारों को क्रियान्वित करने के लिये मि० माण्टेग्यु और लार्ड चेम्सफोर्ड को धन्यवाद दिया गया। अन्तर्जातीय विवाहों को कानूनसम्मत बनाने के लिये प्रस्तुत श्री पटेल के बिल की निन्दा की गई, सभा के मन्त्री ने अस्पृश्यता के निवारणार्थ लोगों की सम्मतियां मांगी। मन्त्री महोदय को इस जांच-पड़ताल का निष्कर्ष यह था कि जो जातियां मेहतर का तथा अन्य गन्दे काम नहीं करतीं उन जातियों

(iii) निम्न सज्जनों की एक प्रचार-समिति बनाई जाती है और उसे अधिकार होगा कि वह प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये यदि आवश्यक समझे तो अन्य सदस्यों को भी नियुक्त कर सकती है ।

'प्रस्ताव को कार्यान्वित करने के लिये' २६ सम्मानित हिन्दू सदस्यों की एक सुदृढ़ प्रचार-समिति नियुक्त की गई । इस समिति ने यह निश्चय किया कि जब तक गोवध रोक नहीं दिया जाता तब तक ब्रिटिश राजतन्त्र के साथ असहयोग किया जाय और असहयोग के प्रोग्राम का निश्चय १९२१ में ६ और ७ नवम्बर को दिल्ली में होने वाले असाधारण अधिवेशन के लिये छोड़ दिया गया ।

दिल्ली के उस असाधारण अधिवेशन में यह निश्चय किया गया कि (१) प्रिन्स आफ वेल्स के भारत आगमन का बहिष्कार किया जाय, (२) विदेशी वस्त्रों का बहिष्कार किया जाय और स्वदेशी वस्त्रों को लोकप्रिय बनाया जाय और (३) हिन्दुओं से अपील की गई कि वे ब्रिटिश गवर्नमैंट की सैनिक, पुलिस तथा अन्य नागरिक नौकरियां छोड़ दें ।

दूसरे प्रस्ताव में हिन्दुओं के धार्मिक नेताओं, विद्वान पण्डितों और साधुओं से यह प्रार्थना की गई कि वे एकस्वर से एकमत होकर यह व्यवस्था दे दें कि गौमाता की रक्षा के लिये प्रत्येक हिन्दू ब्रिटिश सरकार से असहयोग आरम्भ कर दें ।

तीसरे प्रस्ताव द्वारा ५० से भी अधिक प्रसिद्ध प्रसिद्ध हिन्दू नेताओं की एक उपसमिति नियुक्त कर दी गई और उसे यह अधिकार दिया गया कि वह कार्यालय के लिये उपयुक्त व्यक्ति नियुक्त कर ले और जब आवश्यक समझे तो अपनी सदस्य संख्या बढ़ा ले । इस अधिवेशन के आय-व्यय का लेखा ले लेने के बाद असहयोगात्मक और अहिंसक आन्दोलन को सफल बनाने के

प्रधानमंत्री तथा अन्य लोगों ने जो भाषण दिये वे कांग्रेस के प्लेटफार्म से भी भलीभांति दिये जा सकते थे। निम्न प्रस्ताव अपनी कथा अपने आप कहता है :

(i) यह निश्चय किया गया—"वर्तमान सरकार ने सैनिक प्रयोजन के लिये गोहत्या की आज्ञा देकर और विदेशों में गोमांस, गौ और बैल के निर्यात की आज्ञा देकर न केवल हिंदुओं के बद्धमूल भावनाओं की निरन्तर अवहेलना की है, अपितु चिरकाल से हिंदुओं के पोषित धार्मिक विचारों को भी निरंतर भड़काया है, सरकार के इन कृत्यों के प्रति यह सभा घोर असन्तोष प्रकट करती है और इनका विरोध करती है। इस सभा की यह निश्चित सम्मति है कि अब वह समय आ गया है जबकि हिंदू यह भलीभांति अनुभव करलें कि यह काम केवल उन्हीं का और केवलमात्र उन्हीं का ही है कि वे अपने धर्म की रक्षा करें, और अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिये सम्पूर्ण कष्टों को सहने एवं बलिदान करने के लिये उन्हें उद्यत रहना चाहिये तथा उन्हें सम्पूर्ण वैध उपायों और अहिंसक साधनों को बरतने के लिये भी तैयार रहना चाहिये।"

(ii) "भारत में गोवध को रोकने के लिये तथा गोमांस आदि का अन्य देशों में निर्यात रोकने के लिये तत्काल प्रचार कार्य शुरू कर देना चाहिये। यदि समय रहते वर्तमान सरकार हिंदुओं की बद्धमूल धार्मिक भावनाओं पर ध्यान न दे तो अखिल भारतीय हिंदू महासभा का विशेषाधिवेशन भगवान श्रीकृष्ण के जन्मस्थान एवं पवित्र तीर्थ वृन्दावन में—जहां कि भगवान ने गौओं की रक्षा की थी— अगली जन्माष्टमी के अवसर पर बुलाया जाये और इस सम्बन्ध में भविष्य में क्या पग उठाया जाय, यह निश्चय कर लिया जाय"।

मुसलमान संगठित हो गये, हिन्दुओं में साम्प्रदायिक धार्मिक भावनाएं तो निर्बल हो गईं परन्तु 'खिलाफत कमेटी' की आधार-शिला रख कर मुसलमानों में साम्प्रदायिक संगठन को खूब सुदृढ़ किया जाने लगा। सार्वदेशिक हिन्दूसभा ने सिर छिपा लिया और हिन्दू अपनी मनुष्य और धन शक्ति द्वारा खिलाफत आंदोलन की सहायता करने लगे। इसलिए सन १९१९ और १९२ में सभा का कोई वार्षिक अधिवेशन नहीं हुआ।

इसके विपरीत हकीम अजमल खां ने मुस्लिम धर्मोपदेशकों की एक संस्था स्थापित की और उसका नाम 'जमीयत-ए-उल्माए हिन्द' रखा। उनके ही आश्रितों में से एक को इस संस्था का अध्यक्ष नियुक्त कर दिया गया, जिसने संकेत पाकर सरकार के विरुद्ध फतवे देने शुरू किये और इस कार्य के लिए अन्य सहायकों को निमन्त्रण दिया जाने लगा।

अगस्त १९२० में असहयोग आंदोलन प्रारम्भ हुआ और दिसम्बर १९२० में नागपुर में सभी असन्तुष्ट उग्र नेता गिरफ्तार कर लिये गये। इन्हीं दिनों अप्रेल १९२१ में हरिद्वार में हिंदू-सभा का छठा अधिवेशन हुआ। इस बार सभा ने जो प्रथम काय हाथ में लिया वह था सभा के उद्देश्यों और नियमों में परिवर्तन। सभा के साथ 'महा' जोड़कर इसका नाम 'अखिल भारतीय हिंदू महासभा' नाम रख दिया गया और उसमें निम्न परिवर्तन किये गये :

१. धारा (ख) को निकाल कर उसके स्थान पर धारा (ड.) रख दी गई और 'सरकार के साथ राजभक्त रूप में सहयोग करना' वाले वाक्य को बदल कर इस प्रकार कर दिया गया—'जिससे संयुक्त और स्वशासित भारतीय राष्ट्र की स्थापना की जा सके।'

२. धारा (ग) में निम्न वर्ग की अवस्था को सुधारने का विशेष रूप से उल्लेख किया गया ।

के प्रति जनता की भावना बदलती जा रही है तथा अस्पृश्यता निवारण की ओर लोग अधिकाधिक झुकते जा रहे हैं। अन्त में दिल्ली में होने वाले अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के अधिवेशन से लाभ उठा कर १९१८ में २७, २८ दिसम्बर को राजा सर रामपालसिंह के० सी० आई० ई० की अध्यक्षता में दिल्ली में सभा का पांचवां अधिवेशन किया गया। बहुत से प्रस्तावों में से एक प्रस्ताव में साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व की कठोर शब्दों में निंदा की गई थी परन्तु साथ ही यह कहा गया "हिंदुओं का प्रतिनिधित्व उनकी संख्या के अनुपात से नियत कर दिया जाना चाहिए।" एक अन्य प्रस्ताव में गोहत्या को रोकने के लिए सरकार से प्रार्थना की गई, एक और प्रस्ताव में कांग्रेस से यह प्रार्थना की गई कि वह करतारपुर में बकरीद के समय हुए दंगे के सम्बन्ध में हिन्दुओं और मुसलमानों की सहायता से एक जांच-समिति नियुक्त करे। एक प्रस्ताव में सरकार से अपील की गई थी कि हिन्दुओं की युद्ध-सम्बन्धी सेवाओं को ध्यान में रखते हुए जर्मनों के अधिकार में गये हुए संस्कृत के हस्तलिखित ग्रन्थ तथा अन्य प्राचीन पदार्थ हिन्दुओं को वापिस दिलाये जायें, एक और प्रस्ताव में सरकार द्वारा आयुर्वेदिक पद्धति के प्रति उपेक्षा-भाव रखने का विरोध किया गया।

यह उस हिन्दूसभा का अन्तिम वार्षिक अधिवेशन था जिसके संचालकों का यह विश्वास था कि यदि किसी देश का शासन वहां के निवासियों से आक्रान्ता छीन लेते हैं तो वह भगवान की प्रेरणा से होता है। सन १९१९ के प्रारम्भ के साथ रोलट बिल के विरुद्ध भयङ्कर आंदोलन शुरू हो गया और परिणामस्वरूप दिल्ली, लाहौर और अमृतसर आदि में लोगों को गोलियों का निशाना बनाया गया तथा पंजाब में मार्शल-ला लागू करके भयंकर दृश्य उपस्थित कर दिये गये। इसका परिणाम यह हुआ कि हिन्दू

नाहरसिंह जी, के० सी० आई० ई० की अध्यक्षता में क्षत्रिय महासभा की एक मीटिंग हुई, जिसमें जिला और प्रान्तीय सभाओं ने भाग लिया। उस में इस अवस्था को सुधारने के लिए एक नरम-सा प्रस्ताव पास किया गया। परन्तु इस प्रस्ताव का, सम्भवतः, किताबी मूल्य के अतिरिक्त कोई मूल्य नहीं था।

राजाधिराज अपनी राजधानी में लौट गये, राजपूत सदस्य अपने कर्तव्य को निभा कर और आत्मसन्तोष की सांस लेकर अपने-अपने घरों को चल दिये, और वह प्रस्ताव भी तन्द्रायुक्त घोर निद्रा में पड़ गया। जनवरी १९२३ के प्रारम्भ में 'हिन्दू' साप्ताहिक में एक छोटा और सादा-सा समाचार प्रकाशित हुआ कि ४॥ लाख मुसलमान राजपूतों ने हिन्दुत्व ग्रहण करने का प्रार्थनापत्र दिया है और क्षत्रिय महासभा ने उस पर अपनी स्वी-कृति प्रदान कर दी है। परन्तु राजपूत तो पहले ही सो चुके थे और सामान्य हिन्दू जनता ने उन पीड़ित मलकान राजपूतों के करुण-क्रन्दन पर कोई कान नहीं दिया।

परन्तु इस घटनाचक्र से मुसलमान उत्तेजित हो उठे। जहां तक मुझे स्मरण है, विरोध प्रगट करने के लिये प्रथम सभा लाहौर जिले के पट्टी गाँव में हुई थी। इस सभा में देवबन्द के मौलवियों ने भयङ्कर विद्वेषात्मक भाषण दिये और हिन्दुओं को धमकाते हुए कहा गया कि यदि हिन्दुओं ने इस्लाम में दीक्षित मलकान राजपूतों को शुद्ध करने का प्रयत्न किया तो हिन्दू-मुस्लिम एकता चीर-चीर कर के भंग कर दी जायगी। पट्टी की इस मीटिंग की एक रिपोर्ट अमृतसर के मुस्लिम दैनिक 'वकील' के १७ जनवरी १९२३ के अङ्क में प्रकाशित हुई थी। इसके लगभग चार सप्ताह बाद ही विभिन्न सम्प्रदायों के मुस्लिम प्रचारक दर्जनों की संख्या में आगरा, मथुरा और भरतपुर के मलकान गांवों में घुस गये और प्रचार कार्य करने लगे। फरवरी के प्रारम्भ में ५० से

समय से यह प्रयत्न कर रहे थे कि उन्हें हिंदुओं में पुनः सम्मिलित कर लिया जाय। १९०५ से भी पूर्व इनमें से कुछ को प्रायश्चित्त आदि करा कर पुनः हिंदुओं में सम्मिलित कर लिया गया, इसके बाद के अगले दो वर्षों में भी कुछ भूले भटके प्रयत्न किये गये परन्तु उन में बहुत सफलता नहीं मिली। तब, कुछ उत्साही राजपूतों ने 'राजपूत शुद्धि सभा' नाम से एक संगठन खड़ा किया और नियमित रूप से कार्य आरम्भ कर दिया, इसका परिणाम यह हुआ कि लगभग ११३२ मलकानों को शुद्ध कर के हिंदू बना लिया गया। इस सभा की १९१० की समाप्ति पर एक रिपोर्ट भी हिंदी में प्रकाशित की गई। इसके बाद ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दू राजपूतों की उदासीनता और उपेक्षा के कारण यह कार्य शिथिल पड़ गया और इस कार्य की प्रगति रुक गई। हिन्दू राजपूतों की यह उपेक्षा और उदासीनता ऐसा असह्य व्यवहार था जो कि कट्टर से कट्टर हिंदुओं के विश्वास को भी हिला देने का लिये पर्याप्त था, और यही मलकानों को मुसलमानों की सुदृढ़ पकड़ से छुड़ाने में सब से बड़ी बाधा थी। मुसलमान बनाने वाली एजेन्सियों के प्रतिवृत्तों और विवरणों से यह भी प्रगट होता है कि मुस्लिम मलकानों को धर्मपरिवर्तन न करने देने के लिये मुसलमानों की ओर से बहुतेरे प्रलोभन दिये गये पर मलकान इसकी उपेक्षा करते रहे और इस बात पर निरन्तर बल देते रहे कि उन्हें पुनः हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया जाय और आर्य-समाजी लोग भी हिन्दू राजपूतों के पास जाकर उनकी वकालत करते रहे कि मलकान राजपूतों पर लगाये सब प्रतिबन्ध हटा लिये जायें परन्तु हमारे समाज की 'बिरादरियों' के सुकोमल हिन्दू हृदय पिघल ही नहीं सके।

१९२२ के प्रारम्भ में पुनः इस पर विचार किया गया और ३१ दिसम्बर १९२२ में मेवाड़ में शाहपुरा के राजाधिराज सर

तक महासभा उदासीन रहती थी। सभा ने लोगों की व्यक्तिगत धारणाओं और राजनैतिक दलों की भावनाओं को दृष्टि में रखते हुए अहस्तक्षेप की नीति की घोषणा की। हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों की विभिन्न आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए नाना प्रकार के उपाचारात्मक प्रस्ताव पास किये गये और इन प्रस्तावों को बाद के अधिवेशनों और सभाओं में परिवर्द्धित और संशोधित भी किया गया। अब मैं इन्हीं के सम्बन्ध में कुछ विचार उपस्थित करूंगा।

उपचारात्मक सुझाव

हिन्दुओं के अन्धःपतन को रोकने के लिये एवं उन की प्राचीन स्थिति प्राप्त करने के लिये निम्न सुझाव रखे गये और हिंदू महासभा ने उन्हें स्वीकार कर लिया।

प्रथम रोग—जो कि बहुत जीर्ण और पुराना है—हिन्दुओं का अन्य धर्मों को स्वीकार कर के धर्म-परिवर्तन कर लेना है। शताब्दियों की कुम्भकर्णी निद्रा के बाद हिंदुओं में आत्मबोध की भावना जागृत हुई, इसके सम्बन्ध में मैं मार्च १६२३ में बहुत कुछ कह चुका हूं।

१६२३ ईस्वी के अन्तिम सप्ताह में जब कि गया में इण्डियन नेशनल कांग्रेस, खिलाफत कमेटी तथा ऐसी ही अन्य सभाओं के हजारों की उपस्थित में 'जय घोषों' के साथ अधिवेशन हो रहे थे, तभी आगरा में अखिल भारतीय क्षत्रिय महासभा का एक अधिवेशन बिना हुल्लड़ मचाये हो गया और उस में यह प्रस्ताव पास कर दिया गया कि ४॥ लाख मुस्लिम राजपूतों को उनकी बिरादरी में मिला लिया जाय। यह कोई नया प्रस्ताव नहीं है। शताब्दियों से आगरा और उसके आसपास के मलकाना राजपूतों में हिन्दुत्व के प्रति श्रद्धा और विश्वास चला आता था और कुछ शिक्षित राजपूत एक चौथाई शताब्दि से भी अधिक

लिये अवशिष्ट राशि को व्यय करने का इस उपसमिति को अधिकार दे दिया गया।

दिल्ली के इस अधिवेशन की स्वागत-समिति के अध्यक्ष हकीम अजमल खां थे, उन्होंने ही यह प्रस्ताव रखा कि उनके द्वारा स्थापित 'जमीयत-ए-उलेमा' के ही समान 'जमीयत-ए-पण्डितान' की स्थापना की जाय। परन्तु सौभाग्य से यह प्रयत्न असफल रहा और हठधर्मी पुरोहितों और पण्डितों के हाथों होने वाली दुर्गति से हिन्दुओं की रक्षा हो गई। अन्ततोगत्वा प्रसिद्ध बारदोली प्रस्ताव द्वारा असहयोग आन्दोलन समाप्त कर दिया गया और राजनीतिक सभाओं की पिछलग्गू हिंदू महासभा, गोरक्षिणी सभा भी परिणामतः लुप्त हो गई।

जब तक खिलाफत आन्दोलन चलता रहा तो हिन्दू मुस्लिम एकता टिकी रही। परन्तु जब मुस्तफा कमाल पाशा की तलवार ने उस विवाद को ही समाप्त कर दिया तो मुसलमानों की सुप्त हठधर्मिता की भावनाएं पुनः जागृत हो उठी और मुसलमानों ने मलाबार, मुलतान तथा अन्यत्र हिन्दुओं के विरुद्ध जिहाद बोल दिया तथा हिन्दुओं की आंखें खुलवा कर उनकी अस्पृश्यणीय स्थिति का बोध करा दिया। पण्डित मदनमोहन मालवीय ने गया में कांग्रेस अधिवेशन के समय हिन्दू महासभा का एक विशेषाधिवेशन बुलाया और वर्तमान हिन्दू संगठन आंदोलन की आधार शिला रखी।

हिन्दू संगठन के अन्तिम प्रयत्न

एक अधिवेशन—जिसे वस्तुतः प्रथम अधिवेशन कहा जा सकता है—अगस्त १९२३ में बनारस में हुआ जिसमें देश के विभिन्न भागों से आये १५०० प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इस ने सर्वप्रथम और आवश्यक कार्य यह किया कि सभा के उद्देश्यों का विस्तार किया। हिन्दुओं के विभिन्न वर्गों के प्रति अब

पर प्रबन्धसमिति की बैठक प्रारम्भ हुई। इस के सामने मैं ने यह अपील रखी, इसमें कुछ संशोधन करने के पश्चात् वह सर्वसम्मति से पास हो गई और प्रेस में दे दी गई। वह अपील इस प्रकार थी :

"आजकल वह प्राचीन महान् आर्य जाति मृतक सी समझी जाती है, यह भावना इस कारण नहीं है कि इस की संख्या घट रही है अपितु यह सम्पूर्णरूप से असंगठित है। व्यक्तिशः इस जाति का प्रत्येक व्यक्ति बौद्धिक और शारीरिक दृष्टि से अद्वितीय है, मानवजाति की कोई भी अन्य शाखा इस जाति का नैतिकता में मुकाबला नहीं कर सकती, तो भी यह जाति अपने विभिन्न उपवर्गों के कारण और अपनी एकांगी प्रवृत्ति के कारण नितान्त दुर्बल सिद्ध हो रही है।

"हमारी जाति के चुने हुए लाखों व्यक्तियों को बाधित हो कर इस्लाम स्वीकार कर लेना पड़ा है, और हजारों ईसाईयत को स्वीकार करने को बाधित हुए हैं, परन्तु थोड़ा सा भी यह प्रयत्न नहीं किया गया कि इस निकासी को रोका जाय अथवा हिन्दुओं से पृथक हुए भाइयों को पुनः अपने में सम्मिलित कर लिया जाय। नौ मुस्लिम ब्राह्मण, वैश्य, राजपूत, जाट आदि बहुत बड़ी संख्या में गत दो शताब्दियों से बल्कि इससे भी अधिक समय से अपने हिन्दू भाईयों की ओर इस विश्वास और उत्कण्ठा से देखते रहे हैं और अपने प्राचीन हिन्दू भावनाओं और विश्वासों को इस आशा से जीवित रखते आये हैं कि किसी दिन उन्हें पुनः उनकी प्राचीन बिरादरी में वापिस ले लिया जायेगा। केवल-मात्र एक घटना ने हिन्दुओं की आंखें खोल दी। राजपूत महासभा ने पूर्ण बाजे-गाजे के साथ यह घोषणा कर दी कि ४॥ लाख मुसलमान राजपूत हिन्दू होने को तैयार हैं। इस भ्रमात्मक और नाटकीय घोषणा करने के बाद राजपूत महासभा पता

को होने वाली प्रबन्ध-समिति की बैठक में भाग लेने के लिए आगरा चला गया।

बैठक प्रारम्भ होने से पूर्व मेरा परिचय चार पांच व्यक्तियों से कराया गया जो कि बिल्कुल हिन्दु वेश धारण किये हुए थे और उन्होंने वहां उपस्थित सभी लोगों को 'राम राम' कहकर नमस्कार किया तथा मुझ सन्यासी को प्रणाम किया और बैठ गये। मैं ने समझा कि वे सब हिन्दू राजपूत हैं और मैं उन्हें समझाने लगा कि उन्हें अपने पथभ्रष्ट मलकान भाईयों को पुनः अपनी बिरादरी में ले लेना चाहिए। वे तथा अन्य उपस्थित सज्जन इससे बहुत ही आश्चर्य में पड़ गये और हमारे सैक्रेटरियों में से एक ने मुझे बताया कि मैं गलती कर रहा हूँ और 'ये तो नौमुस्लिम मलकान राजपूत हैं जिन्हें शुद्ध किया जाना है।' इससे मुझे भी कम आश्चर्य नहीं हुआ। पूछताछ किये जाने पर उन्होंने अपने सिरों पर मुझे चोटी दिखाई जो कि अन्य हिन्दुओं की चोटी की भांति बढ़ी हुई थी इसके अतिरिक्त उनके हिन्दू रीति रिवाजों के सम्बन्ध में मुझे बताया गया तथा इस ओर विशेष रूप से निर्देश किया गया कि वे भी गौ की रक्षा के लिए उत्कटरूप से तत्पर रहते हैं। यह भी प्रकट हुआ कि ये मलकान अन्य हिन्दू 'बिरादरियों' से भी बढ़ कर मांस मछली तथा अन्य इस प्रकार के भोजनों से बहुत ही दूर थे एवं पक्के शाकभोजी थे। तब मेरी अन्तरात्मा पुकार उठी 'जिन लोगों ने जाज्वल्यमान अग्नि में पटक दिये जाने पर, नंगी तलवारों के सिर पर लटकते हुए होने पर भी अपने हिन्दू विश्वासों को बनाये रखा है क्या उन लोगों की शुद्धि की जायगी, उन लोगों से प्रायश्चित कराया जायेगा? प्रायश्चित तो उन हिन्दुओं को करना चाहिए जिन लोगों ने सदियों तक अपने भाईयों की उपेक्षा करने का अपराध किया है।'

इन नवपरिचित मलकानों के आराम के लिये चले जाने

ठन का नाम 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' रखा जाय, यह स्वीकार कर लिया गया और इसकी एक प्रबन्धसमिति बना दी गई, जिसका मुझे प्रधान निर्वाचित कर दिया गया, यद्यपि मेरी बिल्कुल इच्छा नहीं थी क्योंकि मैं तो पहले से ही विभिन्न कार्यों का उत्तरदायित्व लिये होने के कारण बिल्कुल भरा हुआ था। तो भी मुझे अपने भाईयों के निर्णय के सामने झुकना पड़ा और बाद में तो मेरे तुच्छ प्रयत्नों के प्रति हिंदू जाति ने मेरे प्रति इतना अधिक विश्वास और रुचि प्रकट की कि मुझे अपना सम्पूर्ण समय इसी में लगा देना पड़ा और मुझे अन्य कार्य कुछ समय के लिये स्थगित कर देने पड़े।

उसी दिन मुझे प्रबन्ध समिति की ओर से यह निर्देश मिला कि मैं धन और मनुष्य सहायता की अपील के लिये एक विज्ञप्ति तैयार करूं तथा उसे प्रबन्ध-समिति के सम्मुख उपस्थित करूं। इस प्रयोजन से मैं उसी दिन सांयकाल आगरा से दिल्ली चला गया। प्रारम्भ में मेरा विचार था कि इस अपील को गुप्त रूप से प्रचारित किया जाय और प्रेस को इससे अनभिज्ञ रखा जाय, परन्तु कुछ दिन बाद मुझे ज्ञात हुआ कि जमीयत-हिदायत-उल-इस्लाम की ओर से खुले आम १ लाख रुपये की अपील निकाली गई है और इसी अपील की जमीयत-उल-उलेमा की ६ फरवरी १६२३ की बैठक में इसके प्रधान मौलाना किफायतुल्ला ने समर्थन और संपुष्टि की है [देखो केन्द्रीय खिलाफत कमेटी के पत्र दैनिक 'खिलाफत' का अंक ३७, भाग १, पृष्ठ ४, कालम १ और २] और सैंकड़ों मौलवी और मुस्लिम कार्यकर्त्ता आगरा तथा निकटस्थ प्रदेशों में जमा होने लगे हैं, इन सब का उद्देश्य यह था कि मलकानों को पक्का मुसलमान बना दिया जाय। मैं ने धन और मनुष्य सहायता के लिए एक अपील तैयार की और २० फरवरी १६२३

भी अधिक मौलवी वहां कार्य करने लगे थे और उन सब उलेमाओं ने मिल कर एक सुसंगठित संस्था का निर्माण कर लिया।

मुसलमानों के इन भयङ्कर प्रयत्नों और विषैले भावणों ने हिन्दुओं को एक जबर्दस्त धक्का लगा कर उन्हें सोते से जगा दिया। आधे दर्जन से कुछ अधिक राजपूत तथा अन्य स्वयंसेवक इन मुसलमानी प्रयत्नों को अपनी आंखों से देखने के लिए इधर-उधर घूमे और परिणामस्वरूप १३ फरवरी १९२३ को विभिन्न हिन्दू और राजपूत सभाओं के प्रतिनिधियों का एक अधिवेशन निमन्त्रित किया गया। इसमें मुझे भी निमन्त्रित किया गया था। सनातनधर्म, आर्यसमाज, सिख और जैन संस्थाओं के लगभग ५० अन्य प्रतिनिधियों ने इसका अनुकूल उत्तर दिया और इनके अतिरिक्त लगभग ५० अन्य सदस्यों ने इसमें योग दिया। यहां पर एक और तथ्य यह प्रगट हुआ कि केवल अकेले मलकान राजपूतों का ही प्रश्न नहीं था, अपितु मूला, जाट और गूजर, तथाकथित नौ-मुस्लिम ब्राह्मण और बनिया आदि का भी प्रश्न था जो कि शुद्ध होने को उत्सुक थे।

एक संगठन तैयार करने के प्रश्न पर भी विचार किया गया। यह तो स्पष्ट था कि मुसलमानों का एक जबर्दस्त संगठन था जो कि पूर्ण उत्साह और विद्वेष के साथ काम कर रहा था। यदि हमें मलकानों, मूलों तथा अन्य अपने भाईयों की धार्मिक सुरक्षा की तनिक भी चिन्ता करनी थी तो यह नितान्त आवश्यक था कि हम भी एक मजबूत संगठन तैयार करते। इस नये संगठन का नाम भी मैंने ही प्रस्तुत किया। इस समय तक मुझे एक भी मलकान या नौ मुस्लिम से मिलने का अवसर नहीं हुआ था और न ही मैं उनकी स्थिति से भलीभांति परिचित था। इस कारण मेरा यह विचार था कि किसी प्रकार का प्रायश्चित संस्कार ही करा देना पर्याप्त होगा। इसलिये मैंने प्रस्ताव किया कि इस संग-

हो रहा है। इसलिये, इसका प्रथम उपचार यह है कि भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा को एक जीवित संस्था बनाया जाय और कार्य को सभी दिशाओं से प्रेरणा और द्रुतगति देने के लिए एक लाख रुपया इकट्ठा किया जाये तथा विशुद्ध विचारों के एवं निस्वार्थ व्यक्तियों को इस संस्था में लाया जावे जो कि हिन्दुओं को यह प्रेरणा दें कि वे अपने पीड़ित भाईयों को अपने हृदयों में स्थान देकर पुनः अपने में मिला लें।

दूसरा उपचार यह है कि प्राचीन आश्रम धर्म को सुदृढ़ आधार पर पुनर्जीवित किया जाये। हिन्दूसभा ने पुरुषों को विवाहयोग्य न्यूनतम आयु १८ वर्ष निर्धारित की है और लड़कियों की १२ वर्ष। यह आंशिक सुधार अपर्याप्त है। विवाह योग्य आयु पुरुषों के लिये न्यूनतम २४ वर्ष और कन्याओं के लिये १६ वर्ष ही होनी चाहिये और हिन्दू समाज को इस वैज्ञानिक नियम के पालन के लिये कठोरता से व्यवहार करना चाहिये। उच्च तीन वर्णों के विधुरों का विवाह कदापि किसी कुमारी से नहीं होना चाहिये, कोई विधुर प्रथम पत्नी की मृत्यु के बाद ब्रह्मचर्य का जीवन नहीं व्यतीत कर सकता तो उसे किसी विधवा से विवाह कर लेना चाहिये। यदि कोई व्यक्ति असंयत और पाशविक वृत्तियों का शिकार हो जाता है तो उसे शूद्रों की कोटि में डाल देना चाहिये। तब उत्तर भारत की बहुपत्नी प्रथा तथा दक्षिण भारत की बहुपति प्रथा भी असन्दिग्ध रूप से समाप्त कर दी जानी चाहिये। और, हिन्दुओं को उचित रूप से शिक्षा देने के लिये तथा उनके रक्षण के लिये, देश के कोने कोने में लड़कों और लड़कियों के लिये पृथक्-पृथक् गुरुकुल खोलने चाहिये।

परन्तु हिंदू समाज तो अपनी भीरुतापूर्ण रक्षा करने की पद्धतियों के कारण 'बाल विवाह' को गत दस शताब्दियों से सहन किये जा रहा है और इस प्रकार पाप के गर्त में डूबा हुआ है। इसलिये तीसरा उपचार यह है कि हमारे समाज में जितनी

से प्रारम्भिक शुद्धि से लेकर फरवरी १९२३ के अन्तिम सप्ताह तक दो लाख से कम व्यक्ति शुद्ध नहीं किये गये थे, परन्तु अभी तो एक करोड़ से भी अधिक नौमुस्लिम हिन्दू जाति के क्षेत्र से बाहर पड़े हैं। इनके अतिरिक्त लगभग ४० लाख नौईसाई ऐसे हैं जोकि नामतः तो ईसा के अनुयायियों में गिने जाते है परन्तु जोकि वस्तुतः आचार व्यवहार और धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से पूर्णरूप से हिंदू है और केवलमात्र उन दिनों की प्रतीक्षा कर रहे हैं जबकि कट्टर हिन्दू अपने द्वार खोल देंगे और वे हिंदू क्षेत्र में प्रवेश कर जायेंगे। दक्षिण भारत में ऐसे ब्राह्मण ईसाई देखे जा सकते हैं जो कि यज्ञोपवीत धारण करते हैं, माथे पर टीका लगाते हैं, आयरों और आयंगरों की भांति बड़ी बड़ी चोटियां रखते हैं, और मांसाहारी ईसाईयों के साथ कभी भोजन नहीं करते। उनके ईसाई होने का केवलमात्र चिन्ह यह है कि वे प्रत्येक रविवार को रोमन कैथोलिक गिरजाओं में जाते हैं। ये सभी प्रकार के लोग अभी अपनी पुरानी बिरादरियों में लिये जाते हैं।

हिंदू महासभा तो यह भी निश्चय कर चुकी है उन सब अहिन्दुओं को जोकि हिंदू संस्कारों और हिंदूधर्म में विश्वास रखते हैं पुनः हिंदूधर्म में ले लेना चाहिये। इसका अभिप्राय यह है कि हिंदूधर्म और संस्कृति में विश्वास रखने वाले प्रत्येक अहिंदू का यह अधिकार है कि वह हिंदुत्व को स्वीकार करके उसमें समा जाये और घुलमिल जाये। संक्षेप में हिंदू महासभा के आदेश के अनुसार प्रत्येक ईसाई, मुसलमान और यहूदी बिना किसी बाधा के हिंदुत्व में दीक्षित हो सकता है। हिंदूजाति की इस प्रकार सामूहिक रूप से नैतिक स्वीकृति देने के बाद शेष कार्य सुधारकों का है, परन्तु कार्य बहुत दुश्कर है। पर्याप्त आर्थिक सहायता और उत्साही कार्यकर्त्ताओं के बिना कार्य मन्दगति से

तैयार भोजन भी ग्रहण किया। मेरे सामने यह तथ्य पुनः मूर्त रूप में आ कर खड़ा हो गया कि ये वही वीर और शुद्ध आत्माए हैं जिन्हें शताब्दियों तक जाति-बहिष्कृत रखा गया है और आज उन्हीं आत्माओं से प्रायश्चित कराया जा रहा है। उसी दिन सायंकाल एक और गांव कुठाली के मलकान शुद्ध किये गये। दिसम्बर १९२८ के अन्त तक इसी प्रकार कई गांव शुद्ध किये गये और हजारों तथाकथित नौमुस्लिम पुनः हिन्दू धर्म में वापस ले लिये गये।

भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा के इस कार्य पर हिन्दू महासभा ने अपने निम्न प्रस्ताव द्वारा स्वीकृति की मोहर लगा दी :

"यह महासभा मलकानों का पुनः हिन्दुओं में लिया जाना पूर्णरूप से न्याय और उचित समझती है, क्योंकि ये लोग जाति से राजपूत, ब्राह्मण, वैश्य, जाट, गूजर आदि विभिन्न वर्गों के होते हुए भी सम्पूर्ण रिवाजों और वैवाहिक कृत्यों में हिंदू विधियों का विधिवत पालन करते रहे हैं। महासभा को इस बात से भी सन्तोष है कि शुद्ध किये मलकानों को पुनः उनकी बिरादरियों में ले लिया गया है और यह आशा करती है कि ये बिरादरियां अपने भाईयों के इस प्रकार वापिस लौटने का सहर्ष स्वागत करेंगी।"

'शुद्धि का यह कार्य आगरा तथा निकटस्थ जिलों तक ही सीमित नहीं था, परन्तु भारत के अन्य प्रान्तों में भी यह कार्य सुचारू रूप से चल रहा था। विभिन्न प्रांतों में शुद्ध होने वालों की जाति आदि का नामभेद अवश्य था, परन्तु उनका अपने हिंदू भाइयों से जो सम्बन्ध था वह ठीक एक ही प्रकार का था। मलकान, मूले, मूल-इ-इस्लाम, अधवर्य आदि नौमुस्लिमों का चाहे जो नामभेद रहा हो परन्तु उन के आचार व्यवहार और रीतिरिवाज बिल्कुल उनके हिन्दूभाईयों जैसे ही थे। मेरे अनुमान

नहीं कहाँ जा के सो गई। इस घोषणा को मैं भ्रमात्मक इस-लिये कहता हूं क्योंकि मलकान राजपूतों के प्रबल बहुमत ने व्यवहार और विश्वास में कभी इस्लाम को स्वीकार नहीं किया। हां, हिन्दू तो सो गये, परन्तु मुसलमान एक जीवित जाति होने के कारण एकदम क्रियाशील हो उठे हैं और उनके प्रचारकों के मुण्ड के मुण्ड इस कार्य में जुट गये हैं और उनकी आजी-विका तथा प्रचार के लिए रुपया पानी की तरह बहाया जा रहा है।

"अन्ततोगत्वा, इसने हिन्दू जनता को जागृत कर दिया है और अब सभी स्थानों से यही ध्वनि सुनाई देती है कि हमारे उन पीड़ित भाईयों को वैदिक धर्म की शरण में ले लिया जाय तथा उन्हें हिन्दुओं में सम्मिलित कर लिया जाय। इसलिए 'भारतीय हिन्दू शुद्धि सभा' के नाम से एक संस्था संगठित की गई है और उसका यह उद्देश्य है कि जो लोग हिन्दू धर्म में पुनः लौटना चाहते हैं उन्हें लौटा लिया जाय। इस संस्था की प्रबन्धसमिति में हिन्दुओं की सभी जातियों में से प्रमुख व्यक्ति लिये गये हैं।"

उपर्युक्त अपील २३ फरवरी से दैनिक पत्रों में प्रकाशित होनी शुरू हुई और २५ फरवरी को मलकानों का प्रथम जत्था शुद्ध किया गया, ये मलकान ग्राण्ड ट्रंकरोड पर स्थित 'रैभा' गांव के थे जो आगरा से १३ मील पर है। यह मेरा भाग्य था कि अकस्मात् मुझे प्रथम बार उन तथाकथित मुस्लिम राजपूतों के सच्चे हिन्दू घरों को देखने का सौभाग्य मिला और उनके रहन सहन की हिन्दू पद्धति मेरे हृदय पर अंकित हो गई।

बाहर से आये हुए हजारों अभ्यागतों की उपस्थिति में मलकानों को उनके हिन्दू भाईयों ने पुनः हिन्दू जाति में ले लिया, और इन अभ्यागतों ने शुद्ध किये हुए मलकानों द्वारा

बाल विधवाएं हैं यदि उनकी अनुमति और इच्छा हो तो उनका पुनर्विवाह कर दिया जाय। यह केवल आपद्धर्म है। यदि कोई हिंदू पाप करता है अथवा शास्त्रीय आदेशों का उल्लंघन करता है तो उसे प्रायश्चित करना चाहिये। उचित प्रकार से किया हुआ प्रायश्चित न केवल व्यक्तियों के पापों को धो देता है अपितु राष्ट्र के पाप को भी बहा देता है। सनातन विचार का हिन्दू न केवल वेद और स्मृतियों पर विश्वास रखता है अपितु पुराणों पर भी विश्वास रखता है। वेद एक शाश्वत धर्म का प्रतिपादन करते हैं जो कि सब कालों में सत्य है। वेद ही धर्म का आदि स्रोत है :

'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्'

स्मृतियों को भी, जो वेदानुकूल हैं और वेद-विरुद्ध नहीं हैं, प्रामाणिक माना जाता है। इन स्मृतियों में अत्यन्त संकटकाल में पालने योग्य नियमों का विधान है, यही नियम 'आपद्धर्म' के नाम से कहे जाते हैं।

वेदों के अतिरिक्त व्यवस्था आदि स्मृतियां भी देती हैं, स्मृतियों में बालविधवा आदि के पुनर्विवाह की अनुमति है। स्मृतियों का यह विधान है कि यदि किसी कुमारी का शक्ति द्वारा उसकी अनिच्छा होते हुए अपहरण किया जाय तथा बलात्कार किया जाय तो उसके कौमार्य की स्थिति को समाप्त न समझा जाय। स्मृति ग्रन्थों के सैकड़ों उद्धरणों में से निम्न कुछ उद्धरण मेरी बात का समर्थन करने के लिये पर्याप्त हैं :

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वेच्छया,
उत्पादयेत पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतापि वा,
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनःसंस्कारमर्हति।

(मनु अध्याय ६. श्लोक १७५, १७६)

यदि किसी स्त्री का उसके पति ने परित्याग कर दिया है अथवा वह विधवा है और उसने एक और व्यक्ति को पति रूप में स्वीकार कर लिया है तो उसकी सन्तान 'पुनर्भू' कहलायेगी यदि उस स्त्री का प्रथम पति से संयोग नहीं हुआ है तो वह दूसरे पति से वैधानिक रूप से विवाह कर सकती है।

कन्यैवाक्षतयोनिर्वा पाणिग्रहणदूषिता।
पुनर्भूः प्रथमा प्रोक्ता पुनःसंस्कारमर्हति॥
(नारद. अ. १२, श्लोक ४६)

यदि किसी स्त्री का केवलमात्र पाणिग्रहण एक बार हो चुका है और वह कुमारी है तथा अक्षतयोनि है वह प्रथम पुनर्भू कहाती है और उसका पुनः विवाह संस्कार हो सकता है।

पाणिग्रहे मृते बाला केवलमंत्रसंस्कृता,
सा चेदक्षतयोनिः स्यात् पुनःसंस्कारमर्हति।
(वशिष्ठस्मृति अ० १७)

यदि किसी विवाहिता बाला के पति की मृत्यु हो जाये और उसका विवाह केवल मन्त्रोच्चारण तक ही हुआ है तथा अक्षतयोनि है उसका पुनः विवाह संस्कार हो सकता है।

बलाच्चेत्प्रहृता कन्या मन्त्रैर्यदि न संस्कृता,
अन्यस्मै विधिवद्देया, यथा कन्या तथैव सा।
निसृष्टायां हुते वापि यस्यै भर्त्ता म्रियते सः।
सा चेदक्षतयोनिः स्याद् गतप्रत्यागतासती।
पौनर्भवेन विधिना पुनःसंस्कारमर्हति॥
(बौधायन धर्मशास्त्र अ० १ श्लोक १५ १६)

यदि किसी कन्या का बलपूर्वक अपहरण किया गया है और विधिवत उसका विवाह नहीं हुआ तो उसे विधिवत अन्य को दिया जा सकता है क्योंकि वह भी कुमारी कन्या के समान है। यदि किसी का पति विवाहोपरान्त मर जाता है और वह

अक्षतयोनि है तो वह पति के घर हो आने के बाद भी पुनर्विवाह कर सकती है ।

उद्वाहिता च या कन्या न संप्राप्ता च मैथुनम्,
भर्तारं पुनरभ्येति यथा कन्या तथैव सा।
समुद्धृत्य तु तां कन्यां सा चेदक्षतयोनिका,
कुलशीलवते दद्यादिति शातातपाऽब्रवीत ।

विवाहोपरान्त यदि कन्या के साथ संभोग आदि नहीं किया गया तो उसे किसी अन्य पति को दिया जा सकता है क्यों— कि वह कुमारी कन्या के समान है । यदि वह कन्या अक्षतयोनि है तो उसे कुलशील वाले किसी भी व्यक्ति को दिया जा सकता है । ऐसा शातताप मुनि का मत है ।

चौथा उपचार यह है कि प्राचीन आर्यों के वर्णाश्रम धर्म को पुनरुज्जीवित किया जाय। मेरा अभिप्राय प्रचलित जातियों आदि से नहीं है, इस जातपात का तो सर्वथा विनाश होना ही चाहिये, और यह तो प्रत्येक सच्ची भारतीय सन्तान के लिये एक अभिशाप है । यदि हिन्दूसमाज को सम्पूर्ण विनाश से बचाना है तो आजकल के इन अप्राकृतिक और कठोर सहस्त्रों उपजातियों तथा सैकड़ों जातिगत भेदों को समाप्त करना ही होगा ।

सर्वप्रथम उपजातियों के भेद समाप्त कर देने चाहिये और हिन्दुओं में 'असवर्ण जाति' नाम से कोई जाति नहीं रहनी चाहिये। प्राचीन वर्णधर्म के अनुसार हिन्दूसमाज को एकदम से परिवर्तित कर देने की कठिनाई को भलीभांति अनुभव करता हूँ । परन्तु इसमें तो कोई कठिनाई होनी ही नहीं चाहिये कि सम्पूर्ण उपजातियों को तथा अस्पृश्य वर्ग को संगठित करके असवर्ण नाम से जो लोग पुकारे जाते हैं उन्हें केवलमात्र चार वर्णों में समा दिया जाय । ब्राह्मण वर्ण अपने

आप में ही एक वर्ग होना चाहिये, इसको विभिन्न पंचगौड़ पंचद्रविड़ भूमिहार, तगा आदि उपजातियां स्वीकार नहीं की जानी चाहिये। क्षत्रियों में राजपूत, खत्री, जाट, गूजर आदि केवल राष्ट्र के रक्षकवर्ग में एक ही वर्ण के रूप में स्वीकार किये जाने चाहिये। व्यवसाय और कृषि के कार्य में लगी सभी जातियां और उपजातियां एक वैश्य वर्ण में ही सम्मिलित की जानी चाहिए। शेष लोगों से निर्मित वर्ण शूद्र होगा, जोकि समाज की सेवा के लिए है। प्रारम्भ में जातियों के अन्दर पारस्परिक वैवाहिक प्रतिबन्ध समाप्त करके स्वतन्त्रतापूर्वक विवाह होने देने चाहिये, अनुलोम विवाहों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। इस के बाद धीमे धीमे प्रतिलोम विवाहों का समावेश करना चाहिये। और अन्त में एक हिन्दू का वर्ण निश्चित करने के लिये गुण और कर्म का ही विचार करना चाहिए।

परन्तु सम्पूर्ण जातियों का एक साथ भोजन आदि करना तो तत्काल प्रारम्भ कर देना चाहिये। यहां यह अभिप्राय नहीं है कि भोजन इस प्रकार संयुक्तरूप से किया जाये जैसे कि कई मुसलमान एक साथ एक थाली और कटोरे में भोजन कर लेते हैं। अपितु पृथक् पृथक् थालियों और कटोरों में साफ सुथरे शूद्र द्वारा पकाये भोजन का एक साथ बैठ कर खायें। अकेली यही पद्धति हिंदुओं में घुसी छुआछूत को समाप्त कर देगी।

हिन्दू महासभा ने अछूतों से सम्बद्ध एक लम्बा प्रस्ताव पास किया है, परन्तु इस ने स्थिति को स्पष्ट करने की अपेक्षा और अधिक उलझा दिया है। इस प्रस्ताव के अनुसार यह केवलमात्र स्थानीय हिन्दुओं पर ही निर्भर है कि वे उन कुओं से, जोकि ईसाई और मुसलमानों के लिये भी खुले हैं, पानी भरने दें या नहीं। और यदि कोई भक्त अछूत किसी हिंदू मन्दिर में जाकर अपने इष्ट देवता की पूजा करना चाहे तो यह मन्दिर के पुजारी की

इच्छा पर निर्भर है कि वह उस अछूत को मन्दिर में घुसने दे या नहीं, चाहे उस मन्दिर में मुसलमान वेश्याएं आकर नाचती हों और मुसलमान तबलची तथा सारंगी वाले वहां आकर वादन का काम करते हों । उन अस्पृश्य कहे जाने वाले लोगों के बच्चों के स्कूल और कालेज के प्रवेश के सम्बन्ध में जितना कम कहा वही अच्छा है। ऊपर उल्लिखित सन्दिग्ध सुविधाएं देने की घोषणा करने के बाद जब हिंदू महासभा अधिकारपूर्ण ढंग से निम्न सिद्धांत की स्थापना करती है तो वह वस्तुतः एक किनारे पर पहुंच जाती है। हिंदू-महासभा के मन्तव्य के अनुसार "अस्पृश्यों को यज्ञोपवीत धारण कराना, वेदों की शिक्षा देना और उनके साथ बैठ कर भोजन करना सनातनधर्म के अनुसार शास्त्र और लोक मर्यादा के विपरीत है।"

इन अनर्थों से छुटकारा पाने के लिये और अदर्शन, अप्रवेश, अस्पर्शन, और निषेध आदि उपाधियों को जड़ से उखाड़ फेंकने का एकमात्र उपचार यह है कि प्राचीन आर्यों के वर्णधर्म को पुनर्जीवित किया जाय।

हिन्दू संगठन के आधार

मेरी सम्मति में हिन्दू संगठन को वास्तविक आधार पर सङ्गठित करने के लिए उपर्युक्त चार ही उपचार हैं। हिन्दू-महासभा द्वारा पास किये गये प्रस्तावों की सफलता भी इन्हीं उपचारों को ठीक-ठीक प्रयुक्त करने पर निर्भर है।

यह सत्य है कि गोरक्षा का प्रश्न न केवल हिन्दू-समाज के विभिन्न सम्प्रदायों को एकत्र करके सम्मिलित क्रिया करने के लिए उत्साह पैदा करता है अपितु हिन्दू-समाज के सदस्यों की शारीरिक तथा भौतिक शक्ति की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। परन्तु यदि परिगणित जातियों का विकास जारी रहा और वे केवल इस कारण अपने पैतृक धर्म को छोड़ते रहे कि उनके

सहधर्मी उन्हें सामाजिक दृष्टि से उत्पीड़ित करते रहते हैं, तथा अपने ही सगे सम्बन्धियों के क्रूर व्यवहार से तंग होकर यदि हिन्दू विधवाएं वेश्यावृत्ति को अपनाती रहीं एवं मुसलमान बनती रहीं और यदि उन्हें अपनी ही जाति में पुनर्विवाह करने का अवसर न दिया गया तो स्वभावतः गोभक्षक श्रेणी की संख्यावृद्धि होती जायगी और गोरक्षा का प्रश्न अक्रियात्मक आदर्शों का स्वप्नमात्र रह जायेगा।

यदि हमारा अपना ही घर व्यवस्थित नहीं है तो अहिन्दू गुण्डों के आक्रमणों को रोकने में हिन्दू-रक्षक सङ्गठन कहां तक समर्थ हो सकेंगे? मुसलमानों के संघर्ष से बचने का सर्वोत्तम मार्ग यह है कि हम अपनी स्त्रियों और बच्चों की रक्षा और देख-भाल का प्रबन्ध स्वयं करें।

सम्पूर्ण भारत में देवनागरी लिपि का प्रचलन और राष्ट्र-भाषा रूप में हिन्दी का प्रयोग नितान्त आवश्यक है, क्योंकि एक ही भाषा-भाषी राष्ट्र का प्रत्येक व्यक्ति विचार और क्रिया की दृष्टि से एक दूसरे के निकट आने लगता है। परन्तु जब तक वर्ग और जातिगत पक्षपात लुप्त नहीं हो जाते तब तक एक सामान्य भाषा और साहित्य की उत्पत्ति की सम्भावना नहीं की जा सकती।

हिन्दूसमाज का उद्धार इस बात पर निर्भर है कि समाज सामूहिक रूप से क्रियाशील हो उठे, परन्तु वैयक्तिक उद्धार तो वैयक्तिक साधनों से ही हो सकता है। धर्म का दर्शनात्मक रूप तो व्यक्तिगत वस्तु है और इसी कारण आस्तिक, बहुदेवतावादी और नास्तिक भी संगठित हिन्दू समाज की विस्तृत गोद में निःशंकभाव से स्थान पा सकते हैं। परन्तु जहां तक धर्म के नियम (कानून आदि) और उसके पालन का प्रश्न है वहां हिन्दू समाज एक समूह रूप से लिया जायगा और इसीलिये यदि

किसी का वैयक्तिक धर्म सामाजिक दृष्टि से अहितकर है अथवा हिन्दू समाज के राष्ट्रीय उद्धार में बाधक है तो उस वैयक्तिक धर्म को रोकना ही श्रेयस्कर है।

हिन्दू संगठन की ओर प्रथम पग

स्वभावतः अब यह प्रश्न उठता है कि हिन्दू संगठन की ओर प्रवृत्त होने के लिए प्रथम पग क्या उठाया जाय? मैंने अपने सम्पूर्ण भारत के भ्रमण में यह अनुभव किया है कि आज के शिक्षित एक दूसरे से मिलने के लिए नितान्त उदासीन रहते हैं। उसका प्रमुख कारण यह है कि उनके पास मिलने के लिये तथा सभा आदि के आयोजन के लिये कोई सार्वजनिक स्थान नहीं है। उनके जातिगत मन्दिरों में इतना भी स्थान नहीं है कि वहाँ सौ या दो सौ व्यक्ति इकट्ठे बैठ जायँ। दिल्ली में जामामस्जिद और फतहपुरी मस्जिद को छोड़ कर, जहां कि २५ से ३० हजार मुस्लिम श्रोता एकसाथ बैठ सकते हैं, और भी यहां पुरानी मस्जिदें विद्यमान हैं जहां कि हजारों की सख्या में लोग एकसाथ बैठ सकते हैं। परन्तु हिन्दुओं के लिए केवलमात्र एक ही लक्ष्मी-नारायण की धर्मशाला है जहां पर कि कठिनाई से ८ सौ व्यक्ति बैठकर बन्द स्थान में अपनी सभा कर सकते हैं। इस पर भी विशेषता यह है कि मुसलमानों की प्रत्येक सभा नितान्त शब्दशून्य होती है जब कि धमशाला में यात्रियों के शोर के कारण वक्ताओं की आवाज कठिनाई से सुनाई देती है।

इस कारण मेरा सर्व प्रथम सुझाव यह है कि प्रत्येक नगर और शहरमें एक हिन्दू-राष्ट्र मन्दिर की स्थापना अवश्य की जानी चाहिये जिसमें एकसाथ २५ हजार व्यक्ति एक साथ समा सकें और इन स्थानों पर प्रतिदिन भगवद्गीता, उपनिषद्, रामायण और महाभारत की कथा होनी चाहिये। इन राष्ट्र-मन्दिरों

क प्रबन्ध स्थानीय सभा के हाथ में रहना चाहिये और वह इन स्थानों के अन्दर अखाड़े, कुश्ती, गतका आदि खेलों का भी प्रबन्ध करे। जब कि हिन्दुओं के विभिन्न साम्प्रदायिक मन्दिरों में उनके इष्ट देवताओं की पूजा होगी, इन बड़े हिन्दू मन्दिरों में तीन मातृशक्तियों की पूजा का प्रबन्ध होना चाहिये और वे हैं :

(i) गोमाता (ii) सरस्वती माता और (iii) भूमिमाता

वहां कुछ जीवित गौएं रखी जानी चाहियें जो कि हमारी समृद्धि की द्योतक हैं, उस मन्दिर के प्रमुख द्वार पर गायत्री मन्त्र लिखा जाना चाहिये जो कि प्रत्येक हिन्दू को उसके कर्त्तव्य का स्मरण करायेगा तथा अज्ञान को दूर करने का सन्देश देगा, और उस मन्दिर के बहुत ही प्रमुख स्थान पर भारतमाता का एक सजीव नकशा बनाना चाहिये, इस नकशे में उसकी विशेषताओं को विभिन्न रंगों द्वारा प्रदर्शित किया जाय और प्रत्येक भारतीय बच्चा प्रतिदिन मातृभूमि के सम्मुख खड़ा होकर उसे नमस्कार करे और इस प्रतिज्ञा दोहराये कि वह अपनी मातृभूमि को उसी प्राचीन गौरव के स्थान पर पहुंचाने के लिए प्राणों तक की बाजी लगा देगा जिस स्थान से उसका पतन हुआ था।

मैंने स्नेह और नम्रतापूर्वक जो दिशा बताई है यदि उसका श्रद्धा और विश्वास के साथ अनुगमन किया जाय तो मैं समझता हूं कि सभी सुधार धीमे-धीमे हो जायेंगे और मानवसमाज के उद्धार के लिए एक बार फिर प्राचीन आर्यों की सन्तान सामने आकर खड़ी हो जायगी।

शमित्योम् !!!

विजय पुस्तक भण्डार दिल्ली

द्वारा

प्रकाशित और प्रचारित पुस्तकें

जीवन चरित्र

[१]	नेताजी सुभाषचन्द्र बोस	मूल्य	१)
[२]	पं० मदनमोहन मालवीय	,,	१।)
[३]	महर्षि दयानन्द सरस्वती	,,	१॥)
[४]	पं० जवाहरलाल नेहरू	,,	१।)
[५]	मौ० अबुलकलाम आजाद	,,	॥=)
[६]	श्री सुभाषचन्द्र बोस (संक्षिप्त)	,,	॥=)

अन्य पुस्तकें

[१]	जीवन संग्राम		१)
[२]	सरला की भाभी	(उपन्यास)	२)
[३]	सरला	(,,)	१)
[४]	मैं भूल न सकूं	(कहानियां)	॥)
[५]	जीवन की झांकियां		
	१. दिल्ली के वे स्मरणीय बीस दिन		॥)
	२. मैं चिकित्सा के चक्रव्यूह से कैसे निकला		॥)
	दोनों खण्डों का एक साथ		।॥)
[६]	आनुपातिक प्रतिनिधित्व		।)

भंडार द्वारा प्रचारित पुस्तकें

विविध

[१] बृहत्तर भारत (सजिल्द) मूल्य ७)
[२] त्याग का मूल्य (उपन्यास) ,, ५)
[३] तिरंगा झण्डा (एकांकी नाटक) ,, १।)
[४] मैं मजूरी (कविता) ,, ।।)
[५] वैदिक वीर गर्जना ,, ।।।=)
[६] दिल्ली चलो ,, २)
[७] नेता जी सरहद पार ,, १।=)
[८] आचार्य रामदेव (जीवन झांकी) ,, १।।)
[९] हमारे घर ,, ।।=)
[१०] महाराणा प्रताप ,, १।।)
[११] हरिसिंह नलवा ,, १।)
[१२] शिवाजी ,, १।।)
[१३] अखण्ड भारत ,, ।।।)
[१४] भारतीय उपनिवेश-फीजी ,, २)

उपयोगी विज्ञान

[१] साबुन विज्ञान ,, २)
[२] तेल विज्ञान ,, २)
[३] तुलसी ,, २)
[४] अंजीर ,, १)
[५] देहाती इलाज ,, १)
[६] सोडा कास्टिक ,, १।।)
[७] स्याही विज्ञान ,, २)